ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

पवमान

(मासिक)

मूल्य: ₹ 20

वर्ष : 31 कार्तिक-मार्गशीर्ष वि0स0 2076 अंक : 11 नवम्बर 2019

मुद्रक: सरस्वती प्रेस, देहरादून वजन: 50 ग्राम

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

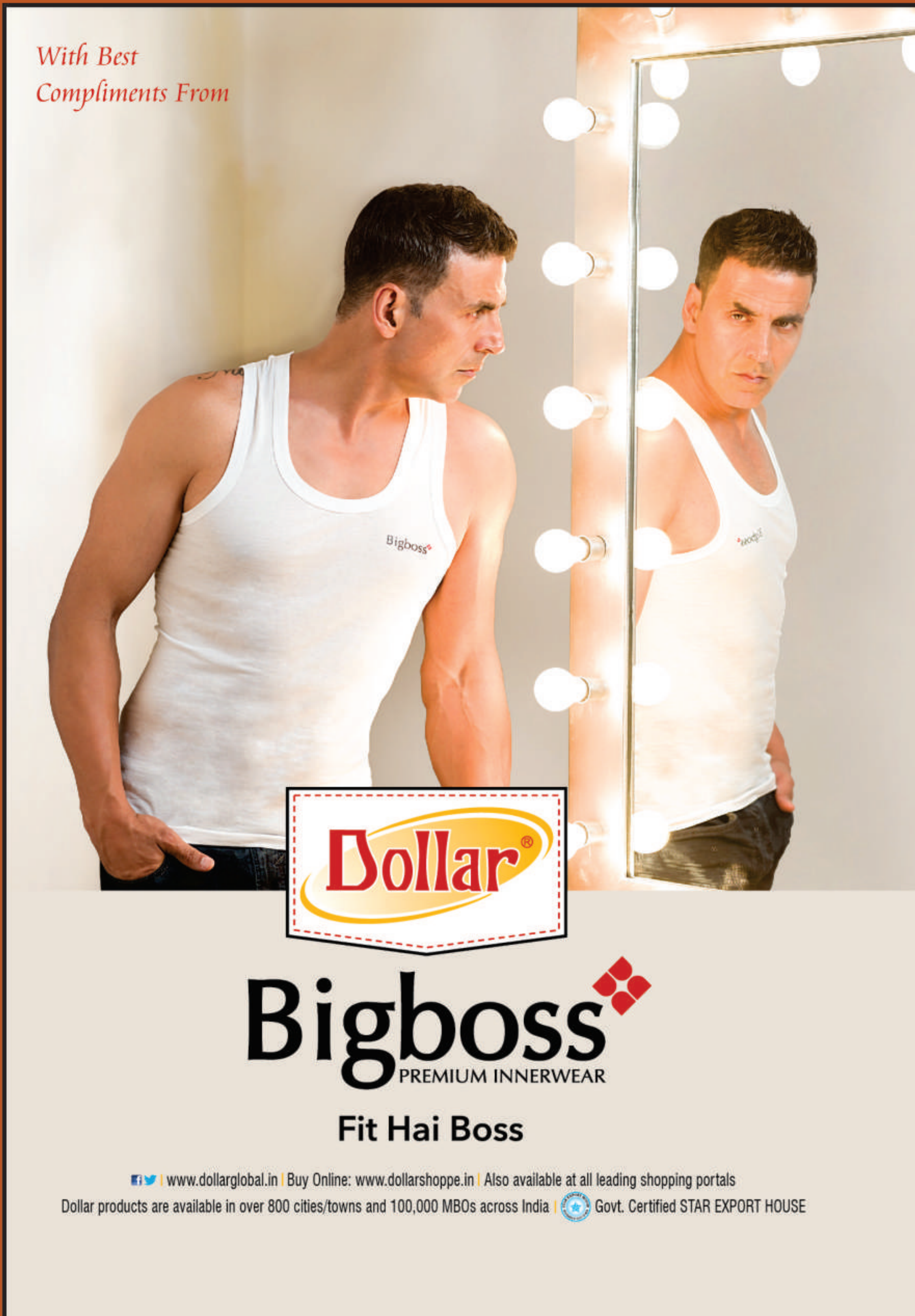
With Best
Compliments From
Dollar®
Bigboss
PREMIUM INNERWEAR
Fit Hai Boss
www.dollarglobal.in | Buy Online: www.dollarshoppe.in | Also available at all leading shopping portals
Dollar products are available in over 800 cities/towns and 100,000 MBOs across India | Govt. Certified STAR EXPORT HOUSE

ओ३म्

पवमान

वर्ष—31 अंक—11

कार्तिक—मार्गशीर्ष 2076 विक्रमी नवम्बर 2019

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,120 दयानन्दाब्द : 195

★

—: संरक्षक :—

स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती

मो. : 9410102568

★

—: अध्यक्ष :—

श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री

मो. : 09810033799

★

—: सचिव :—

प्रेम प्रकाश शर्मा

मो. : 9412051586

★

—: आद्य सम्पादक :—

स्व0 श्री देवदत्त बाली

★

—: मुख्य सम्पादक :—

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

अवैतनिक

मो. : 9336225967

★

—: सम्पादक मण्डल :—

अवैतनिक

आचार्य आशीष दर्शनाचार्य

मनमोहन कुमार आर्य

★

—: कार्यालय :—

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,

तपोवन मार्ग, देहरादून—248008

दूरभाष : 0135—2787001

मोबाईल : 7310641586

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com

Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	2
स्वतंत्रता पूर्व आर्यसमाजों की स्थापना	डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	3
संस्कृत ही विश्व की प्राचीनतम भाषा है	मनमोहन कुमार आर्य	8
हम कहाँ से आये हैं और हमें कहाँ....	मनमोहन कुमार आर्य	11
सोहन सिंह भाकना	स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज	14
हनुमान जी का शास्त्रीय वीरभाव	ईश्वरी प्रसाद प्रेम जी	16
आयुर्वेदिक चिकित्सा	डॉ० भगवान दास	19
शरीर नाशवान, आत्मा अविनाशी.....	मनमोहन कुमार आर्य	22
ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह	आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार	25
श्रीमती प्रभो तोमर को श्रद्धांजलि		28
आर्य समाज	आर्य रविन्द्र कुमार जी	29
वैदिक योग प्रशिक्षण शिविर (प्रथम शिविर)		31
वैदिक संध्या एवं दैनिक यज्ञ		32

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के बैंक खातों का विवरण

दान हेतु बैंक खाते का नाम	बैंक का नाम व पता	बैंक अकाउन्ट नं.	IFSC Code
आश्रम को दान देने के लिये			
1. "वैदिक साधन आश्रम"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101001530	CNRB0002162
पवमान पत्रिका शुल्क			
2. "पवमान"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101021169	CNRB0002162
सत्संग भवन एवं आरोग्य धाम के निर्माण में सहयोग हेतु			
3. "वैदिक साधन आश्रम"	ओरियन्टल बैंक ऑफ कामर्स 17 राजपुर रोड, देहरादून	00022010029560	ORBC0100002
तपोवन विद्यानिकेतन स्कूल के लिये			
4. 'तपोवन विद्या निकेतन"	यूनियन बैंक, तपोवन रोड, नालापानी, देहरादून	602402010003171	UBIN0560243

पवमान पत्रिका में विज्ञापन के रेट्स

1. कलर्ड फुल पेज — रु. 5000/— प्रति माह
2. ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज — रु. 2000/— प्रति माह
3. ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज — रु. 1000/— प्रति माह

सदस्यों के लिए पवमान पत्रिका के रेट्स

1. वार्षिक मूल्य (12 प्रतियाँ प्रति वर्ष) — रु. 200/— वार्षिक
2. 15 वर्ष (आजीवन) के लिए मूल्य — रु. 2000/—

नोटः पवमान पत्रिका फुटकर विक्रय के लिए उपलब्ध नहीं है।

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

अस्तेय-व्रत

अस्तेय का अर्थ है– चोरी न करना। किसी वस्तु को बिना मूल्य चुकाए या परिश्रम किए बिना प्राप्त करना भी चोरी है। जिस वस्तु पर हमारा अधिकार नहीं हैं, उसे पाने की इच्छा बीजरूप में चोरी ही मानी जाएगी। मन पर काबू करते हुए इस दुर्गुण से बचना अस्तेय व्रत है। काम, क्रोध, लोभ, मात्सर्य आदि मनोविकारों के कारण अपराधों में वृद्धि हो रही है। सब इन्द्रियों में मन अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण इससे होने वाली चोरी सूक्ष्मतम् होती है। किसी वस्तु को देखकर मन ललचाता है। लालच या प्रलोभन के वशीभूत होने पर अस्तेय का पालन सम्भव नहीं है। किसी चीज की जरूरत न होने पर भी उसे हड़प कर फालतू चीजों का अम्बार लगा लेना परिग्रह कहलाता है, जो अस्तेय व्रत का शत्रु है। आज भी यदि हमें नैतिक मूल्यों को स्थापित करना है तो आर्थिक मर्यादा निश्चित करते हुए संयम आवश्यक है जिससे न केवल हमारे तनाव दूर होंगे, हमें सुख व संतोष भी प्राप्त होगा।

आज उपभोगवाद का दौर चल रहा है। ऐसे समय में अस्तेय व्रत की प्रासिंगकता बढ़ गई है। इसके द्वारा ही हम उपलब्ध साधनों का सीमित उपभोग करते हुए सुखी और संतुष्ट जीवन बिता सकते हैं। महात्मा गांधी ने अपने एकादश व्रतों में अस्तेय को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के साथ अस्तेय को जीवन का अभिन्न अंग माना है। आज विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों से लुभा कर सारे संसार में उपभोगवाद का प्रसार किया जा रहा है। दुनिया को भारतीय संस्कृति के संतोषवाद के सिद्धान्त से दूर करते हुए अत्यधिक उपभोगवाद की ओर ले जाने का प्रयास जारी है। ऐसे में केवल वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित योगदर्शन के नियमों पर चलकर ही मानव को सहारा मिल सकता है। हमें अपनी आवश्कताओं को निम्नतम स्तर पर रखते हुए यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि परमेश्वर ने वेद मंत्र में कहा है– ''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किन्चिनजगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।'' इस मंत्र का भावार्थ यह है कि हमें परमेश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव करते हुए प्रकृति का उपभोग त्यागपूर्वक करना चाहिए और लोलुपता से दूर रहना चाहिए। हमें सदा यह भी विचार करना चाहिए कि भला यह धन किसका है अर्थात् यह समस्त धन परमेश्वर का ही है। अस्तेय एक मानसिक संकल्प है जिससे मन पर नियंत्रण किया जा सकता है क्योंकि संसार का समस्त कार्य व्यापार मन ही संचालित करता है। मन ही कर्ता, साक्षी और विवेकी है। मन के वश में होने पर अस्तेय व्रत का पालन सब प्रकार से किया जा सकता है। मन को हम सत्य के द्वारा पवित्र बना सकते हैं। अस्तेय व्रत साधने के लिए संतोष का सदगुण अपनाना होगा। हम जानते है कि सारे व्रत या संकल्प एक दूसरे से जुड़े हैं, इसलिए अस्तेय की प्राप्ति के लिए सत्य, अहिंसा आदि व्रतों का भी पालन करना होगा। संतोष के बिना परिग्रह समाप्त नहीं किया जा सकता है और न ही चोरी समाप्त हो सकेगी। इसलिए सुखमय जीवन और स्वस्थ समाज के लिए अस्तेय व्रत परमावश्यक है।

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व उत्तराखण्ड में आर्यसमाजों की स्थापना

—डॉ० कृष्णकांत वैदिक

महर्षि ने 1867 में हरिद्वार में चल रहे कुम्भ के अवसर पर पाखण्ड खण्डिनी पताका की स्थापना कर सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार कार्य आरम्भ किया था। उस समय उनका प्रधान क्षेत्र उत्तर प्रदेश ही था परन्तु इस कार्य में स्वामीजी को विशेष सफलता नहीं मिल सकी थी। 1878 के मध्य में स्वामीजी पंजाब में वैदिक धर्म का प्रचार व अनेक आर्यसमाजों की स्थापना करके जब उत्तर प्रदेश आए तो मार्च 1881 के प्रथम सप्ताह तक यह प्रदेश ही उनका कार्य क्षेत्र बना रहा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करते हुए सबसे अधिक समय उत्तर प्रदेश में बिताया था। उस समय उत्तराखण्ड के वर्तमान समस्त जनपद उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत आते थे। आर्यसमाज द्वारा हिन्दुओं की अनेक मान्यताओं का घोर विरोध ही नहीं किया गया था अपितु मूर्तिपूजा और श्राद्ध आदि का खण्डन भी किया था। आर्यसमाज द्वारा सामाजिक विषमताओं तथा ऊंच–नीच के विरुद्ध आवाज उठाई गई और विधवा विवाह व स्त्री–शिक्षा का पुरजोर समर्थन किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में बहुत से व्यक्ति ऐसे भी थे जो पुराने अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध करते हुए प्रगतिशील और क्रान्तिकारी विचार रखते थे। इन सज्जनों का आर्यसमाजों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

उत्तराखण्ड का पहला आर्यसमाज रुड़की में—

तत्कालीन उत्तर प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र में सबसे पहले आर्यसमाज की स्थापना रुड़की में हुई थी। जब स्वामीजी रुड़की पधारे उस समय तक इस नगर में इन्जीनियरिंग कालेज की स्थापना हो चुकी थी, जिसके कारण यहां सुशिक्षित लोग काफी अच्छी संख्या में रहते थे। रुड़की में स्वामीजी को निमंत्रित करने वालों में श्री उमराव सिंह प्रमुख थे जो थामसन इन्जीनियरिंग कालेज में अध्यापक थे। ये स्वामीजी के रुड़की निवास के दौरान लगातार उनके साथ रहे थे। इनके अतिरिक्त श्री कन्हैयालाल और श्री लाला सरजन दास का भी मुख्य योगदान था। 25 जुलाई, सन् 1878 को महर्षि रुड़की पधारे और वहां पर 20 अगस्त 1878 तक रहे। लगभग चार सप्ताह के इस विश्राम के दौरान स्वामी जी के प्रवचनों से थामसन इन्जीनियरिंग कालेज में ही नहीं अपितु रुड़की नगर और ब्रिटिश अधिकारियों व प्रोफेसरों में भी आर्यसमाज के मन्तव्यों की धूम मच गई। इसके फलस्वरूप कितने ही लोग स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित वैदक धर्म की ओर आकृष्ट हुए और 20 अगस्त 1878 रुड़की में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। आगे चलकर इस समाज ने बहुत प्रगति की। इस समाज के इतिहास के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मार्टिन लूथर नाम के एक ईसाई ने जून, 1881 में अपनी पत्नी सहित ईसाई धर्म का परित्याग कर वैदिक धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी।

कुमायूं में आर्यसमाज नैनीताल आदि की स्थापनाः—

तत्कालीन उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र

कुमायूं में आर्यसमाज की स्थापना का कार्य उन्नीसवीं सदी में ही प्रारम्भ हो गया था। सबसे पहले आर्यसमाज की स्थापना नैनीताल में महर्षि के जीवनकाल में सन् 1875 में हुई थी। सबसे पहले वहां पर ''सत्य धर्म प्रचारिणी सभा'' का गठन महर्षि दयानन्द के वैदिक मन्तव्यों का प्रचार करने हेतु सन् 1874 में किया गया था और उसके एक वर्ष के बाद उसी संस्था को आर्यसमाज में परिवर्तित कर दिया गया था। उस समय इसका अपना कोई भवन न होने के कारण साप्ताहिक सत्संग व अन्य सभी कार्यक्रम सभासदों के घरों में हुआ करते थे। बाद में सन् 1901 में श्री नारायणदत्त छिमवाल ने समाज भवन के लिए भूमि दान में प्रदान की थी जिस पर आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण किया गया था। नैनीताल में आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं में उस समय श्री सोहन लाल और राम प्रसाद मुख्तार प्रमुख थे। श्री सोहन लाल को तो नैनीताल का चलता फिरता आर्यसमाज कहा जाता था। वे धर्मप्रचार के धुनी थे। श्री रामप्रसाद ने बाद में संन्यास ले लिया था और वे रामानन्द कहलाये। महर्षि के देहावसान के बाद नैनीताल जनपद में काशीपुर, जसपुर, हलद्वानी, रामनगर, आदि स्थानों में सन् 1912 से पूर्व आर्यसमाज स्थापित कर दिये गये थे। श्री वृन्दावन ने महर्षि के मुरादाबाद आगमन के अवसर पर उनके व्याख्यान सुने थे और वे वैदिक विचारों से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। वे महर्षि के अनन्य भक्त बन गए थे। श्री वृन्दावन ने सन् 1885 में काशीपुर में आर्यसमाज की स्थापना की। श्री लालमणि ने अपना मकान आर्यसमाज को दान में दे दिया था। उसी समय में जसपुर में भी आर्यसमाज की स्थापना की गई थी जिसके भवन निर्माण में श्री विशम्भर सहाय और मुसद्दीलाल ने सहायता प्रदान की थी। उस समय हलद्वानी व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहां पर जनवरी, 1896 में आर्यसमाज की स्थापना हुई थी और सन् 1901 तक उसका अपना भवन भी बन चुका था। अल्मोड़ा में आर्यसमाज की स्थापना सन् 1912 से पूर्व हो चुकी थी और अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में आर्यसमाजों की स्थापना सन् 1912 के बाद हुई।

सन् 1918 का दुर्भिक्ष और गढ़वाल में आर्यसमाज की स्थापनाः—

गढ़वाल के पर्वतीय क्षेत्र में वैदिक धर्म के प्रचार का श्रेय श्री जयानन्द भारतीय को जाता है। एक आर्य सज्जन श्री टीकाराम कुकरेती ने इन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश यह कहते हुए दिया कि सबसे पहले इसका तृतीय अध्याय पढ़ें और आगे के अध्याय बाद में पढ़ें। श्री भारतीय ने ऐसा ही किया। सत्यार्थप्रकाश के तीव्र प्रकाश ने इन पर ऐसा प्रभाव डाला कि इनके जीवन की धारा ही बदल गई। जहां पहले वे देवी—देवताओं के झूठे आडम्बर के मकड़ जाल में फंसे थे अब इससे उन्हें घोर घृणा हो गई क्योंकि सच्चे परम पिता परमेश्वर से उनका परिचय हो चुका था। जन्मना जाति—पाति के आडम्बर से भी वह भली प्रकार अवगत हो चुके थे। वे अब समझ चुके थे कि पढ़ने—लिखने, विकास करने और समानता का अधिकार मनुष्य मात्र को है। वे सन् 1911 में गुरुकुल कांगडी हरिद्वार जाकर महात्मा मुंशीराम से मिले। उनसे उन्होंने यज्ञोपवीत, आर्यसमाज और श्रेष्ठ कर्मों के बारे में विस्तार से ज्ञान प्राप्त किया। महात्मा मुंशीराम ने 10, जुलाई 1911 को गुरुकुल के आचार्य श्री रामदेव से उनका यज्ञोपवीत करवाया और उनका शुद्ध नाम जयानन्द भारतीय रखा गया। वे गुरुकुल में रहकर अध्ययन करना चाहते थे परन्तु उनकी बड़ी उम्र के कारण यह सम्भव नहीं था, इसलिए मन मसोस कर वह गुरुकुल से विदा हुए। महात्मा

मुंशीराम के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्होंने दुर्गुण और दुर्व्यसनों को छोड़ने और शेष जीवन आर्यसमाज के प्रचार–प्रसार, दीन–दलितों की सेवा और समाज के उत्थान के लिए अर्पित करने का संकल्प लिया। सन् 1918 में बरेली के आर्योपदेशक पण्डित पुरुषोत्तम तिवारी के साथ वह गांम सेरा सावली गये थे और वहां धर्म प्रचार किया था। वहां के पौराणिक लोगों को यह रास नहीं आया कि एक अब्राह्मण यज्ञोपवीत धारण कर धर्मोपदेश करे। उनका घोर विरोध हुआ। पण्डित पुरुषोत्तम तिवारी ह्रष्ट–पुष्ट और लाठी चलाने में प्रवीण थे। वे उनका मुकाबला करने को तैयार थे परन्तु श्री भारतीय को बल प्रदर्शन करना पसन्द नहीं था। फलस्वरूप धर्म प्रचार का यह प्रयास सफल नहीं हुआ और दोनों वापस लौट आए। सन् 1920 में उन्होंने शिल्पकारों को वैदिक धर्म में दीक्षित कर आर्य बनाने का कार्य पुनः आरम्भ किया। श्री जयानन्द भारतीय द्वारा गढ़वाल के शिल्पकारों के डोला–पालकी आन्दोलन में निभाई गई भूमिका का उल्लेख करना आवश्यक है। जैसा कि पूर्व में वर्णित किया जा चुका है, गढ़वाल के तथाकथित उच्च वर्ण के लोग इन्हें अपना गुलाम समझते थे, न केवल इनके साथ अछूत मानते हुए बर्ताव करते बल्कि उन्हें सामान्य मानवीय अधिकार भी देने को तैयार नहीं थे। गढ़वाल आदि पर्वतीय क्षेत्रों में दुर्गम मार्ग होने के कारण सभी जातियों के लोग वर–वधू को डोला–पालकी में ले जाते थे परन्तु शिल्पकारों का ऐसा करना उनको गंवारा न था। जब महर्षि दयानन्द के विचारों से इनमें जागरूकता फैली और इन्होंने भी अपने दूल्हा–दुल्हनों को डांला–पालकी में ले जाना प्रारम्भ किया तो अनेक स्थानों पर अन्य तथाकथित उच्च वर्ण के लोगों ने घोर विरोध किया और मारपीट की जिसके फलस्वरूप कई गिरफतारियां और मुकदमे बाजियां हुईं। अब ये शिल्पकार लोग जाग उठे थे और झुकने के लिए तैयार नहीं थे इसलिए कई वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में श्री भारतीय ने बहुत मुख्य भूमिका निभाई थी। वे कई बार महात्मा गांधी, श्री जवाहरलाल नेहरू, महामना मदन मोहन मालवीय और पं० गोबिन्द बल्लभ पन्त से मिले और इस समस्या का निदान करने हेतु अप्रैल, 1946 में एक अभूतपूर्व आर्य सम्मेलन दुगड्डा में कराया। ये सब प्रयास अन्ततोगत्वा सफल हुए और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इस दमन को रोकने के लिए डोला–पालकी ऐक्ट बनाया गया। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद भी वे आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार और दीन–दुःखियों की सेवा में लगे रहे।

सन् 1918 में गढ़वाल में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। महात्मा हंसराज व स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में आर्य स्वयं सेवकों के अनेक दल गढ़वाल पहुंचे। उनके द्वारा वहां के निवासियों को आर्य मान्यताओं से परिचित कराने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां के कुछ निवासी इन विचारों से प्रभावित हुए थे। वहां अनेक विद्यालय भी खोले गए थे जिनका संचालन पण्डित अर्जुन देव भारती द्वारा किया गया था। नजीबाबाद आर्यसमाज और मोहन आश्रम हरिद्वार के पण्डित देवानन्द (स्वामी सच्चिदानन्द) द्वारा भी धर्म प्रचार कार्य किया गया जिनका मुख्य लक्ष्य शिल्पकार लोगों, जिन्हें अछूत समझा जाता था, का मनोबल उठाकर वैदिक धर्म में दीक्षित कर आर्य बनाना था। श्री जयानन्द भारतीय व इन समस्त आर्य प्रचारकों के प्रयासों के फलस्वरूप हजारों शिल्पकार आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए। उस समय अनेक आर्यसमाज स्थापित किए गए। इनमें चौंदकोट का आर्यसमाज मुख्य है जिसकी स्थापना सन् 1925 में श्री रघुवरदयाल (श्री दयाल मुनि) जो जन्मना ब्राह्मण थे, के द्वारा की गई थी। उनके सहयोगियों में श्री केशर

सिंह रावत मुख्य थे। एकेश्वर के मेले में जब वह प्रचार कार्य कर रहे थे तब कुछ विरोधियों ने उन पर पर हमला किया परन्तु फिर भी प्रचार कार्य चलता रहा। उनके प्रयत्नों से हजारों शिल्पकारों को यज्ञोपवीत धारण करये गये और वैदिक धर्मी बनाया गया था। सन् 1934–35 तक गढ़वाल में दस आर्यसमाज स्थापित हो चुके थे। पंचपुरी का आर्यसमाज 25, मई सन् 1941 में श्री जयानन्द भारतीय की प्रेरणा से स्थापित किया गया था। श्री शान्तिप्रकाश प्रेम और श्री सन्त सिंह आर्य आदि का इस समाज की स्थापना व संचालन में मुख्य योगदान था। फरवरी, 1946 में कंचोली में तथा सन् 1947 में तलाई और बमखोला में आर्यसमाज की स्थापना की गई थी। श्री बालकराम ब्रह्मचारी जो श्री रघुवरदयाल के ही शिष्य थे, ने भी ओम का ध्वज लेकर पूरे पर्वतीय क्षेत्र में भ्रमण कर प्रचार कार्य किया। फलस्वरूप आर्यसमाजों की इस संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई और एक समय ऐसा आया जब यह संख्या 117 तक पहुंच गई थी। दुर्भाग्य से ये सब समाज लम्बे समय तक सक्रिय नहीं रह पाये क्योकि दुर्गम इलाके होने के कारण प्रचारक वहां कम जा पाते थे और अधिक्तर आर्यसमाज के कार्यकर्ता उस समय स्वतंत्रता के संग्राम में सक्रिय हो गए थे।

कोटद्वार आर्यसमाज–

कोटद्वार आर्यसमाज की स्थापना 1, जनवरी 1925 को हुई थी। उस समय आर्यसमाज की स्थापना और वैदिक प्रचार–प्रसार में श्री भगतराम और श्री नन्दराम सिंह आदि का की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। भारत के स्वतंत्र होने व देश के विभाजन के बाद बहुत से लोग लाहौर आदि स्थानों से आकर इस इलाके में बसने लगे थे। डा0 जगन्नाथ, श्री शमशेर सिंह, श्री रतन सागर जैन आदि के कोटद्वार में आने पर आर्यसमाज का संगठन मजबूत हुआ। आर्यसमाज में अगली पीढ़ी के रूप में महाशय टेकचन्द, लाला मक्खन लाल, श्री रूपचन्द्र, लाला और लाला चुन्नी लाल ने आर्यसमाज के प्रचार व प्रसार का कार्य भली भांति किया था। इसके उपरान्त पं0 शिवदत्त, श्री ब्रह्मदेव (वर्तमान में आर्यसमाज कोटद्वार के प्रधान श्री आनन्द प्रकाश अग्रवाल के पिता), श्री दानवीर सिहं और श्री भिखारी लाल आदि के द्वारा आर्यसमाज की निष्ठा व लगन से सेवा की गई थी। सन् 1948 में कोटद्वार में एक धर्मनिष्ठ वैदिकधर्मी श्री केशव प्रसाद भटनागर रेलवे में स्टेशन मास्टर के रूप में तैनात थे। उनकी प्रेरणा से एक कन्या पाठशाला खोली गई थी जो आजकल एक इन्टर कालेज का रूप धारण कर चुकी है। प्रारम्भ से ही कोटद्वार का आर्यसमाज गढ़वाल में आर्यसमाज की गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु रहा है।

देहरादून में आर्यसमाज–

महर्षि दयानन्द सन् 1879 अप्रैल माह में देहरादून पधारे थे। उसी वर्ष वहां 29, जून 1879 को आर्यसमाज की स्थापना की गई थी। प्रारम्भ में इसका अपना भवन न होने के कारण कोई उन्नति नहीं हो पायी थी। साप्ताहिक सत्संग सभासदों के निवास पर हुआ करते थे। बाद में इस समाज के निर्माण के लिए भूमि खरीदी गई और भवन निर्माण के लिए चंदा एकत्र किया गया। उस समय स्वामी महानन्द ने इस कार्य में विशेष योगदान दिया था। सन् 1879 से 1988 तक पण्डित कृपाराम आर्यसमाज के मंत्री रहे और 1894 में वे प्रधान भी चुने गए थे। उनका इस समाज की स्थापना और आरम्भिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। श्री ज्योतिस्वरूप जो एक वकील थे उनका 1880 से

लेकर 1920 अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में इस समाज की उन्नति में अत्यन्त योगदान रहा। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती महादेवी की महर्षि के मन्तव्यों पर अगाध श्रद्धा थी। उन्हीं के अनुरोध पर श्री ज्योतिस्वरूप ने महादेवी कन्या पाठशाला की स्थापना की थी जो बाद में स्नातकोत्तर कालेज के रूप में विकसित हुआ। देहरादून आर्यसमाज के प्रारम्भिक काल में श्री दरोगालाल सिंह, मुंशी अलखधारी, पण्डित क्षेमानन्द उपाध्याय और श्री पूरण सिंह नेगी आदि का मुख्य सहयोग रहा। सन् 1947 तक देहरादून के आर्यसमाज में प्रिंसिपल लक्ष्मण प्रसाद, पं. नरदेव शास्त्री, लाला आर्य किशोर, पं. अमरनाथ वैद्य, पं. चन्द्रमणि विद्यालंकार, चौधरी हुलास वर्मा, श्री नारायणदास भार्गव, चौधरी बिहारीलाल, पं. गौतमदेव विद्यालंकार और मास्टर रामस्वरूप में मुख्य भूमिका रही और इनके कर्तृत्व में आर्यसमाज की बहुत उन्नति हुई। सन् 1929 में श्रद्धानन्द बाल वनिता आश्रम की स्थापना की गई। सन् 1932 में आर्यसमाज द्वारा एक विशाल सहभोज का आयोजन किया गया था जिसमें छुआछूत को मिटाने के प्रयास हेतु उन व्यक्तियों को भोजन परोसने का काम दिया गया था जिन्हें पौराणिक समाज अछूत समझता था। इस भोज में चारों वर्णों के—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र लोगों ने एक ही पंक्ति में बैठ कर प्रेम से भोजन किया था। आर्यसमाज के इस प्रयास से न केवल सामाजिक समरसता बढ़ी अपितु कट्ठरपन्थी पौराणिकों में खलबली मच गई थी। डा. सत्यकेतु विद्यालंकार द्वारा सम्पादित आर्यसमाज का इतिहास—द्वितीय भाग में इस समाज (आर्यसमाज धामावाला) की प्रशंसा करते हुए उल्लिखित किया गया है कि ''आर्यसमाज की गतिविधियों तथा कार्यकलाप के निर्देशन के लिए देहरादून के आर्यसमाज को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।'' वर्तमान स्थिति को देखते हुए देश के अन्य आर्यसमाजों की भांति इसके कार्यकलापों में भी कुछ शिथिलता दिखाई देती है, उसके कारणों का पता करके वर्तमान सभासदों को उन्हें दूर कर फिर से आर्यसमाज का वह स्वर्णिम युग लाना चाहिए। आर्यसमाज देहरादून के इतिहास का पुनरावलोकन करते हुए हम स्वर्गीय यशपाल आर्य और स्वर्गीय श्री देवदत्त बाली को हृदय की गहराइयों से स्मरण करते हैं जिन्होने प्राणपण से आर्यसमाज की सेवा की थी। उन्हीं के प्रयासों से सन् 2004 में इस समाज की 125 वीं जयन्ती पर भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा एक स्पेशल आवरण जारी कर इस समाज को सम्मानित किया गया था।

वर्तमान में देहरादून नगर में आर्यसमाज की कई शाखाएं और वैदिक साधन आश्रम, तपोवन तपोवन मार्ग देहरादून में वैदिक मान्यताओं का प्रचार/प्रसार करने में लगी हैं। उत्तराखण्ड के अन्य स्थानों जैसे कोटद्वार आर्यसमाज आदि में आर्यसमाज की विचार धाराओं के प्रचार/प्रसार का अच्छा कार्य हो रहा है परन्तु यहां हम केवल इतिहास का अवलोकन कर रहे हैं, अतः इन नये समाजों का विस्तृत विवरण देना युक्तियुक्त नहीं है। आर्यसमाज की विचार धाराओं से प्रेम रखने वाले सभी सज्जनों से निवेदन है कि अपने ग्राम या नगर के आर्यसमाज के इतिहास के सम्बन्ध में यदि उनके पास कोई अभिलेख या व्यक्तिगत जानकारी हो तो कृपया इन पंक्तियों के लेखक को सूचित करें ताकि उत्तराखण्ड आर्यसमाज का प्रारम्भ से अब तक का सम्पूर्ण इतिहास सम्पादित किया जा सके।

संस्कृत ही विश्व की प्राचीनतम भाषा है, अन्य कोई भाषा नहीं है

–मनमोहन कुमार आर्य

हम भारत के एक हिन्दी प्रदेश उत्तराखण्ड में निवास करते हैं और यहीं हमारा जन्म हुआ है। इससे पूर्व उत्तराखण्ड उत्तर प्रदेश राज्य का अंग हुआ करता था। हमारी मातृभाषा हिन्दी है। हिन्दी को संस्कृत की पुत्री कहा जाता है और वस्तुतः यह सत्य ही है। इसी प्रकार से देश व विश्व की भी सभी भाषायें किसी न किसी रूप में संस्कृत के शब्दों का विकार होकर व भौगोलिक कारणों से उच्चारण में अन्तर आने से लम्बे समय तक उसका प्रयोग करने के बाद परिवर्तित रूप में आकर बनी हैं। संस्कृत की प्राचीनता का प्रथम प्रमाण वेद और वैदिक साहित्य है। संसार में कोई ग्रन्थ वेद से प्राचीन नहीं है। इसकी पुष्टि जर्मनी में जन्में और इंग्लैण्ड में निवास करने वाले प्रोफेसर मैक्समूलर ने भी की है। उन्होंने ऋग्वेद को संसार का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ स्वीकार किया है। सृष्टि के आरम्भ में वेदों की उत्पत्ति हुई थी जिसका आधार सृष्टिकर्ता परमात्मा हैं। परमात्मा ने चार ऋषियों को उत्पन्न कर उनकी आत्माओं में अपने जीवस्थ वा सर्वान्तर्यामी स्वरूप से वेदों का ज्ञान दिया था। संस्कृत भाषा में आविर्भूत वेदज्ञान का प्रचार ऋषियों ने अपने समय के स्त्री व पुरुषों में किया जो वर्तमान समय में भी जारी है। वेदों का वर्णन भारत के सभी प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों, मनुस्मृति, उपनिषद, दर्शन, रामायण एवं महाभारत आदि में मिलता है। वेद ही संसार का प्रथम व प्राचीनतम ग्रन्थ है। किसी अन्य भारतीय भाषा व विश्व की भाषा का कोई ग्रन्थ वेद व उसकी संस्कृतभाषा से प्राचीन नहीं है। मनुस्मृति के श्लोक 'एतददेशस्य प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।' से भी वैदिक धर्म व संस्कृति सहित संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा सिद्ध होती है। हमारे विचार से कहीं कोई पुरात्व की खुदाई कर देने और वहां मिले आवासीय भवनों आदि की हजार व दो हजार वर्ष पुरानी श्रृंखला व सभ्यता से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वहां वर्तमान में बोली जाने वाली भाषा ही विश्व की प्राचीनतम भाषा है। कौन सी भाषा किस भाषा से प्राचीन है, इसका ज्ञान उसके साहित्य से होता है। यदि वेद से प्राचीन किसी भाषा का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता तो वेद व उसकी भाषा को ही प्राचीनतम मानना होगा। वेद और संस्कृत भाषा ही प्राचीनतम हैं इसके अनेक प्रमाण हैं।

वर्तमान में देश के सभी भागों में जिन जड़ देवताओं की पूजा की जाती है वह सब वही हैं जिनकी उत्तर भारत के मन्दिरों में स्तुति व उपासना आदि की जाती है। इसका अर्थ यही प्रतीत होता है प्राचीन काल में पूरा देश सांस्कृतिक आधार पर एक था। सृष्टि के आरम्भ होने के बाद समय–समय पर भारत से जो लोग पलायन कर अन्य भागों में जाकर बसते रहें, उनके भारत से दूर चले जाने से वहां–वहां की भाषा संस्कृत भाषा के शब्दों में विकार आने से भिन्न–भिन्न होती गई। देश के विभिन्न भागों में संस्कृत से भिन्न भाषाओं के शब्दों पर ध्यान दें तो उन सबमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों की बहुतायत है। उन सभी भाषाओं में

संस्कृत के शब्दों का होना संस्कृत की प्राचीनता को सिद्ध करता है। संस्कृत भाषा में किसी अन्य भाषा के शब्द नहीं मिलते। कोई यह नहीं कह सकता कि वेदों का अनुक शब्द वेदेतर किसी अन्य भाषा से आया है जबकि अन्य सभी भाषाओं में वेदों के अनेक शब्द किंचित विकार के साथ मिलते हैं। वेदों के सभी शब्द यौगिक व योगरूढ़ हैं। इन शब्दों का आधार वा उत्पत्तिकर्ता मनुष्य नहीं अपितु परमात्मा ही हैं। तिब्बत में वेदों के अस्तित्व में आने के बाद लोगों ने अनेक कारणों से वहां से देश–देशान्तर में पलायन आरम्भ किया था। उनकी भाषा संस्कृत थी परन्तु वह जहां जाते थे वहां समय के साथ भौगोलिक कारणों से अनेक शब्दों के उच्चारण में कुछ अन्तर आ जाता था। वहां की नई पीढ़ियों द्वारा संस्कृत के केन्द्र भारत से दूरी होने के कारण भाषा में परिवर्तन होता रहा। नई भाषाओं के अस्तित्व में आने में हजारों व लाखों वर्ष लगे और यह प्रक्रिया चलती रही। अतः संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है और अन्य भाषायें संस्कृत का ही विकार हैं, ऐसा विद्वानों का मत है। इस विषय को विस्तार से जानने के लिये पं. रघुनन्दन शर्मा जी की पुस्तक वैदिक सम्पत्ति का अध्ययन कर उससे सहायता ली जा सकती है।

सृष्टि बनने के बाद परमात्मा ने सभी प्राणियों को अमैथुनी रीति से उत्पन्न किया था। उसके बाद से मैथुनी सृष्टि आरम्भ हुई। इस अमैथुनी सृष्टि को उत्पन्न करके परमात्मा ने इन आदि मनुष्यों में अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा ऋषियों को एक–एक वेद का ज्ञान दिया था। उसी समय से मानव सृष्टि संवंत् आरम्भ हुआ। इसके बाद से ही हमारे पूर्वज धार्मिक अनुष्ठानों को आरम्भ करने से पूर्व एक संकल्प पाठ बोलते थे जिसमें सृष्टि संवंत् सहित अनेक बातें जैसे यजमान का नाम, गोत्र, जम्बू द्वीपे भरत खण्डे सहित नगर व ग्राम आदि स्थानों के नाम आदि का उल्लेख किया जाता है। वर्तमान में भी यह परम्परा जारी है। आज हमारे पंडित जिस किसी परिवार में अग्निहोत्र आदि शुभ व श्रेष्ठ कर्म कराते हैं तो प्रथम इस संकल्प पाठ को यजमान से बुलवाते हैं। इसके अनुसार सृष्टि संवत् **1,96,08,53,120 वां** चल रहा है। इतना ही समय सृष्टि बने तथा मानव को सृष्टि में आये हुए हुआ है। इससे वेदों का उत्पत्ति काल यही 1.96 अरब वर्ष सिद्ध होता है। वेद से पुराना संसार में अन्य कोई ज्ञान व पुस्तक नहीं है। विचार करने पर संसार की सभी लिपियों में संस्कृत की देवनागरी लिपि भी प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होती है। इसमें जो कहा जाता है वही लिखा जाता है। अन्य कुछ भाषाओं की तरह से शब्दों को आगे पीछे करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारे मुंह से जितनी भी ध्वनियां निकल सकती हैं वा निकलती हैं उन सबके लिये एक एक अक्षर नियत है जिनके द्वारा सभी ध्वनियों को निर्दोष रूप में पृथक–पृथक व साथ मिलाकर लिख सकते हैं जबकि अंग्रेजी आदि भाषाओं व लिपियों में यह सुविधा नहीं है। अंग्रेजी में हमें पता ही नहीं होता कि पी यू टी अल्फाबेट मिलकर पुट कैसे बनता है और बी यू टी मिलकर बट क्यों बनता है। पुट की तरह से बुट क्यों नहीं होता? हमें इन्हें रटना पड़ता है। इसके कारण का हमें पता नहीं होता। यह भी जान लें कि वेदज्ञान को उसके मन्त्रों सहित सृष्टि के आरम्भ से सैकड़ों वर्ष तक सुन कर स्मरण वा कण्ठ किया जाता रहा। इस कारण वेदों का एक नाम श्रुति भी है। वर्तमान में भी दक्षिण भारत व देश के कुछ अन्य भागों में कुछ पंडित वेदों के मन्त्रों को उसके आठ प्रकार के जटा, घन आदि पाठों के द्वारा स्मरण करते हैं जिससे इसमें किसी भी प्रकार की कौमा या पूर्ण विराम आदि की अशुद्धि न की जा सके। इससे भी यह सिद्ध है कि संस्कृत ही विश्व की

प्राचीनतम भाषा है। अन्य किसी भाषा के साहित्य को ऐसा महत्व नहीं मिला है। अन्य भाषाओं पर विचार करें तो किसी भी भाषा का इतिहास एक दो हजार वर्ष या अधिक से अधिक तीन से पांच हजार वर्ष पुराना होना ही सम्भव है। वेद सबसे पुराना व प्राचीनतम ग्रन्थ है अतः हमारी संस्कृत भाषा ही सबसे प्राचीन व तुलनात्मक दृष्टि से सर्वोत्तम व सर्वश्रेष्ठ है।

हम यहां भारत के राष्ट्रपति जी से संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान के रूप में सम्मानित पद–वाक्य–प्रमाणज्ञ पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी के एक लेख 'आदि–भाषा का प्रकाश तथा उसका स्वरूप' से भाषा विषयक कुछ निश्चयात्मक शब्द प्रस्तुत कर रहे हैं। यह पूरा लेख ही पठनीय है। यह लेख 'जिज्ञासु रचना–मंजरी' के प्रथम खण्ड में प्रकाशित हुआ है। पं0 जिज्ञासु जी लिखते हैं– 'अतः वेदवाणी (संस्कृत) ही सब भाषाओं की आदि जननी है। वेद की भाषा कभी बोली जाती रही हो, ऐसी बात नहीं। किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इसे भाषा शब्द से नहीं पुकारा गया है, क्योंकि अनन्त प्रभु के ज्ञान वेद में समस्त संसार के ज्ञान का समावेश होने के लिये उसकी रचना स्वभावतः ही ऐसी होनी चाहिये थी, जिसमें एक शब्द अनेक अर्थों का द्योतक हो, अनेकविध ज्ञान एक ही शब्द के द्वारा प्रकट न होने पर ईश्वर को न जाने कितनी बड़ी रचना करनी पड़ती। अतः यही मानना होगा कि आदि में वेद से ले–ले कर शब्दों का प्रयोग होने लगा।

संसार में जितनी भाषायें हैं, उनमें सब से अधिक विस्तृत, पूर्ण और परिश्रम–साध्य उच्चारण वेदभाषा का ही है। उच्चारण–विषय में जितनी सावधानता वेदवाणी के विषय में की गई है, उतनी किसी में नहीं। इतना ही नहीं, लौकिक संस्कृत भाषा के ही उच्चारण में जितनी मौलिकता, स्वाभाविकता और सावधानता आज तक वर्ती गई है, संसार की किसी भी भाषा के उच्चारण में नहीं वर्ती गई। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो भिन्न–भिन्न ध्वनियां हम सुनते हैं, वे संख्या में भी अधिक–मात्रा में संस्कृतभाषा में ही पाई जाती है। केवल संख्या में ही अधिक पाया जाना कोई महत्व नहीं रखता, सबसे बड़े महत्व की बात तो यह है कि संस्कृतभाषा की 63 की 63 ध्वनियां अपनी स्वाभाविकता–नैसर्गिकता–मौलिकता और अनिवार्यता को लिये हुये है। संख्या के विषय में सब विद्वान् जानते हैं कि लातीनी– हिब्रू में 20 वर्ण माने जाते हैं, फ्रांस की भाषा में 25, अंग्रेजी में 26, स्पेन की भाषा में 27, तुर्की और अरबी में 28, फारसी में 31, रूसी भाषा में 35 और संस्कृत में 63। वर्तमान आर्यभाषा वा सामान्य संस्कृत में 47 अक्षर बोले जाते हैं, ऐसा किन्हीं का मत है, सो ठीक नहीं। वास्तविक 63 अक्षर ही देववाणी संस्कृत में हैं, ये ध्वनियां स्वाभाविक हैं, जो सार्थक हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा की ही वर्णमाला सब से पूर्ण वा विस्तृत है। लौकिक और वैदिक भाषा का भेद भी अवश्य ध्यान देने योग्य है। थोड़ी सी संस्कृत जाननेवाला भी समझ सकता है कि वेद के व्याकरण के नियम लौकिक व्याकरण के नियमों से भिन्न होते हैं। धातुओं की जितनी संख्या हमें संस्कृत भाषा में मिलती है, संसार की किसी भाषा में नहीं मिलती। अतः देववाणी (संस्कृत) के आदि भाषा होने और वेद–मूलक होने में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता।'

जब आदि भाषा वेदों की संस्कृत सिद्ध हो गई तो फिर तमिल या अन्य कोई भाषा कदापि प्राचीनतम भाषा के गौरव को प्राप्त नहीं कर सकती। संस्कृत भाषा का आविर्भाव ईश्वर से सृष्टि के आरम्भ में वेदज्ञान के साथ हुआ और यही भाषा व लौकिक संस्कृत ही संसार की प्राचीनतम भाषायें हैं न अन्य कोई भाषा या भाषायें।

हम कहाँ से आये हैं और हमें कहाँ जाना है

—मनमोहन कुमार आर्य

हम सब मनुष्यों का कुछ वर्ष पूर्व इस संसार में जन्म हुआ है और तब से हम इस शरीर में रहते हुए अपना समय अध्ययन—अध्यापन अथवा कोई व्यवसाय करते हुए अपने सांसारिक कर्तव्यों का निर्वाह कर रहे हैं। जब हमारा जन्म हुआ था तो हम अपने माता के शरीर से इस संसार में आये थे। माता के शरीर में हम कब व कैसे प्रविष्ट हुए थे, हममे से किसी को भी ज्ञात नहीं है? हम विज्ञान के उस नियम से परिचित हैं जो यह बताता है संसार में अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती और भाव का कभी अभाव नहीं होता। हम रचे हुए जो भी पदार्थ संसार में देखते हैं उनकी उत्पत्ति के उपादान एवं निमित्त कारण अवश्य होते हैं। भौतिक पदार्थों का उपादान कारण सूक्ष्म प्रकृति है जो सत्व, रजः व तमः गुणों वाली है। इस मूल तत्व प्रकृति से ही यह समस्त भौतिक जगत निमित्त कारण परमात्मा के द्वारा मानव सृष्टि के आरम्भ होने से पूर्व बनाया गया है। संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसका निर्माण बिना अन्य किसी पदार्थ के हुआ हो। मूल त्रिगुणात्मक प्रकृति पर विचार करते हैं तो यह किसी अन्य पदार्थ का विकार न होकर मूल द्रव्य व पदार्थ है जो अनादि, नित्य एवं भाव सत्ता व पदार्थ है। परमात्मा और आत्मा भौतिक पदार्थ न होकर अनादि और नित्य पृथक पदार्थ हैं। ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है और जीवात्मा भी सत्य और चेतन स्वभाव वाला अनादि व नित्य पदार्थ है। ईश्वर एक है परन्तु जीवात्मा संख्या की दृष्टि से अनन्त व असंख्य हैं जिसकी मनुष्यों के द्वारा गणना सम्भव नहीं है। इसके लिये अनन्त शब्द का प्रयोग किया जाता है जो कि उचित एवं यथार्थ है।

ईश्वर की दृष्टि में सभी जीवात्माओं की संख्या सीमित व गण्य कह सकते हैं। यह जीवात्मा अनादि, नित्य, सूक्ष्म, चेतन, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, जन्म—मरण धर्मा, कर्मशील तथा अपने पुण्य व पाप कर्मों का भोक्ता है। जीवात्मा को अपने किए हुए नए व पुराने कर्मों का फल ईश्वर की व्यवस्था से मिलता है। ईश्वर अपने सर्वान्तर्यामी स्वरूप से जीवों के सभी कर्मों का साक्षी होता है। ईश्वर की व्यवस्था से सभी जीव अपने सभी कर्मों का यथातथ्य फल भोगते हैं भले ही वह उन्होंने सबसे छुपकर या फिर रात्रि के अन्धकार में ही क्यों न किये हों। उपनिषदों में बताया गया है कि जिस प्रकार सद्यःजात गाय का बछड़ा हजारों गायों में अपनी मां को खोज लेता व पहचान लेता है, इसी प्रकार जीव के कर्म तब तक जीव का पीछा करते हैं जब तक कि वह उनका फल न भोग लें। जीव को कर्मों का फल ईश्वर देता है। कोई जीव अपने कर्मों का स्वयं फल भोगने के लिये तैयार नहीं होता जैसे कोई चोर यह नहीं कहता कि उसने चोरी की है, उसे दण्डित किया जाये। कर्म—फल विधान को जान लेने पर ही मनुष्य दुष्कर्मों का त्याग कर सद्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और देश व समाज अपराधों से रहित बनता है। ईश्वर ने जीवात्मा के सुधार व उसे सद्कर्मों में प्रेरित करने के लिए ही सृष्टि के आरम्भ में वेदज्ञान दिया है

और वह अनादि काल से जीवों को उनके शुभाशुभ कर्मों का फल देता आ रहा है। हमारे कर्म ही हमारे जन्म व सुख–दुःखों का कारण होते हैं।

हम कहां से आये हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य में निहित है कि हम अनादि सत्ता हैं और इसी संसार व ब्रह्माण्ड में रहते आ रहे हैं। जीवात्मा जन्म–मरण धर्मा तथा कर्मों को करने वाला तथा कर्मों के फलों का भोगने वाला है। अतः इस जन्म से पूर्व हम मनुष्य या किसी अन्य योनि में रहते थे और वहां मृत्यु होने के बाद ही इस जन्म में अपने माता–पिता के पास व उनके द्वारा अपने कर्मों को फल भोगने व नये कर्मों को करने के लिये भेजे गये हैं। पूर्व जन्म में हम सब कहां व किस–किस योनि में थे, और कौन हमारे माता–पिता थे, इन सभी बातों को हम भूल चुके हैं। इसका एक कारण यह है कि पूर्वजन्म में हमारा जो शरीर था वह मृत्यु होने पर अग्नि के द्वारा व अन्य प्रकार से नष्ट हो चुका है। पूर्वजन्म में मृत्यु होने के बाद हमें भावी व नये माता–पिता के शरीर में प्रवेश करने में भी कुछ समय लगा होगा। माता के गर्भ में भी हम दस मास रहते हैं। इस अवधि में हमारी आत्मा व सूक्ष्म शरीर पर पूर्वजन्म के जो संस्कार व स्मृतियां होती हैं, वह विस्मृत होती रहती है। हम अपने इस जीवन में भी देखते हैं कि हमें अपने जीवन की सभी स्मृतियां स्मरण नहीं रहतीं। हमने कल, परसो व उससे पहले क्या–क्या भोजन के पदार्थ खाये, किस रंग के कौन से वस्त्र किस दिन पहने, किन लोगों से मिलें, किनसे क्या–क्या बातें की व सुनी वह सब हमें स्मरण नहीं रहतीं। कुछ समय पूर्व हमारे मन में क्या क्या विचार आये व हमने किससे क्या बातें कीं, उन्हें शब्दशः स्मरण कर हम उनकी शब्दशः पुनरावृत्ति नहीं कर सकते। यह इंगित करता है कि हम जीवन में अनेक बातों को भूलते रहते हैं। जब हमें आज व कल की ही बहुत सी बातें स्मरण नहीं है तो फिर पूर्वजन्म की स्मृतियां न होना, हमारे पूर्वजन्म न होने आधार नहीं कहा जा सकता। हमारी आत्मा सनातन है और जिस प्रकार इसका यह जन्म हुआ है, और अपनी ही तरह अन्य आत्माओं के जन्म व मृत्यु को हम अपने दैनन्दिन जीवन में देख रहे हैं, उसी प्रकार से इस जन्म से पूर्व भी हमारी आत्मा के जन्म व मृत्यु की निरन्तर घटनाओं वा आवृत्तियों को हमें मानना होगा।

ऋषि दयानन्द जी ने पूर्वजन्म के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह कही है कि मनुष्य को एक समय में एक ही बात का ज्ञान होता है। हमारा मन ऐसा है कि इसे एक समय में एक से अधिक बातों का ज्ञान नहीं होता। हमें हर समय अपने होने का व अपनी सत्ता का ज्ञान रहता है। अतः हम पूर्व समय की व उससे भी सुदूर पूर्वजन्म की बातों को भूले हुए रहते हैं। इससे हम सबका पूर्वजन्म नहीं है यह सिद्ध नहीं होता। हम इस जन्म से पूर्व मनुष्यादि किसी योनि में रहे हैं, यह सुनिश्चित है। हमारे न होने का कोई प्रमाण किसी के पास नहीं है। अतः इस जन्म से पूर्व हम किसी योनि में इस संसार में अवश्य रहे हैं। हम जहां भी रहे हैं, वहां हमारे माता–पिता, भाई बन्धु आदि सम्बन्धी एवं मित्र भी रहे हैं और वहां से मृत्यु होने पर ही हम इस संसार में आये हैं। जैसे इस संसार में हम मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों की मृत्यु होकर परजन्म के लिये प्रस्थान होते देखते हैं वैसे ही हम भी अपने–अपने पूर्वजन्मों में मृत्यु होने पर ही परमात्मा की व्यवस्था से इस जन्म में यहां

आये हैं। यह क्रम चलता आ रहा है और प्रलय तक ऐसा ही चलता रहेगा। गीता में योगेश्वर कृष्ण जी ने एक महत्वपूर्ण बात यह भी कही है कि जिस प्रकार जन्म लेने वाले प्राणी की मृत्यु निश्चित है उसी प्रकार मृतक आत्मा का पुनर्जन्म भी निश्चित है। यह जन्म–मरण चक्र अनादि काल से चला आ रहा है और सदैव चलता रहेगा।

हमें इस जन्म में मृत्यु होने पर कहां जाना है, इसका उत्तर भी उपर्युक्त पंक्तियों में कुछ–कुछ आ गया है। मरने के बाद हम सबका पुनर्जन्म अवश्य होगा। हमारे जन्म का आधार हमारे इस जन्म के कर्म होंगे। योगदर्शन में ऋषि पतंजलि ने बताया है कि मरने के बाद हमारे शुभ व अशुभ कर्मों का जो संचय होता है वह प्रारब्ध कहलाता है। उस प्रारब्ध के आधार पर परमात्मा हमारी जाति अर्थात् जन्म तथा आयु सहित सुख–दुःखादि भोग निश्चित करते हैं। पूर्वजन्म के मृत्यु के समय प्रारब्ध कर्मों के अनुसार ही हमारा पुनर्जन्म होता है और हम सुख व दुःख भोगने सहित नये कर्मों को करके अपने भविष्य के पुनर्जन्म के लिये प्रारब्ध व भावी जन्म का आधार बनाते हैं। इस जन्म में मृत्यु होने पर आत्मा अपने सूक्ष्म शरीर के साथ शरीर का त्याग कर ईश्वर की प्रेरणा से पुनर्जन्म के लिए प्रस्थान करता है। शरीर छोड़ने की यह प्रक्रिया परमात्मा द्वारा की जाती है और वही इस आत्मा को इस ब्रह्माण्ड की किसी पृथिवी पर हमारे कर्मों के अनुकूल माता–पिता के यहां जन्म देता है। यह प्रक्रिया जटिल है जिसका ज्ञान हमें नहीं होता। इसका पूरा ज्ञान केवल परमात्मा को ही होता है और वही इसे सम्पन्न करते हैं। यदि हमें इस प्रक्रिया का पूरा ज्ञान होता तो मनुष्य का जीवन सुखों के स्थान पर दुःखों से पूरित होता। परमात्मा की महती कृपा है कि हमें उन अनेक अनावश्यक बातों का ज्ञान नहीं है जिससे हमें दुःख प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के रूप में हम यह कह सकते हैं कि यदि पिछले जन्म में हम पशु थे, वहां हमें जो सुख व दुःख हुए, उन सभी बातों का ज्ञान होता तो उन्हें स्मरण करके ही हम दुःखी रहते और हमारा यह जीवन नरक बन जाता। यदि पूर्वजन्म में हम किसी धनाड्य परिवार में रहे होते और इस जन्म में हम निर्धन परिवार में जन्म लेते तो भी हम पूर्वजन्म को स्मरण करके दुःखी रहते। परमात्मा ने सभी जीवों पर यह कृपा की है कि किसी को अपने पूर्वजन्म, पूर्वजन्म के कर्मों तथा घटनाओं का ज्ञान नहीं है। इसके लिये भी हम सबको ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये।

हम पूर्वजन्म में किस योनि में थे जहां से मृत्यु होने पर हम इस जन्म में आये हैं? इसकी हमे स्मृति नहीं है। इस जीवन में हमारी मृत्यु अवश्य होनी है। सभी उत्पन्न प्राणियों की मृत्यु व जन्म होना संसार का अटल नियम है। मृत्यु होने के बाद हमारी आत्मा हमारे कर्मानुसार इसी पृथिवी अथवा इस ब्रह्माण्ड के किसी अन्य पृथिवी जैसे ग्रह पर जन्म लेगी और अपना जीवन व्यतीत करते हुए ज्ञान प्राप्त कर जीवन के उद्देश्य को जानकर, जो कि दुःखों से पूर्ण मुक्ति है, वेदानुसार ईश्वरोपासना व सद्कर्मों को करते हुए पुनः पुनर्जन्म व मोक्ष की ओर अग्रसर होगी। हमें इस जन्म को सार्थक करने के लिये वेदाध्ययन करना चाहिये और वेदविहित कर्म करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिये। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य व लक्ष्य है।

सोहन सिंह भाकना

—स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज

गदर पार्टी के संस्थापक अध्यक्ष और प्रमुख सूत्रधार बाबा सोहन सिंह भाकना को भारत में किसानों व मजदूरों के आंदोलनों का भी प्रमुख नेता माना जाता है। इनका जन्म जनवरी 1870 में अमृतसर के खुतरई खुर्द नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता भाई करम सिंह भाकना गाँव के थे और माता रामकौर खुतरई खुर्द की थी। जब सोहन सिंह मात्र एक वर्ष के थे तो इनके पिता का देहान्त हो गया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा भाकना गाँव के गुरुद्वारे में हुई तथा उस समय के रिवाज के अनुसार मात्र दस वर्ष की आयु में कुशल सिंह की पुत्री बिशन कौर से इनका विवाह कर दिया गया। 11 वर्ष की आयु में इन्हें प्राइमरी विद्यालय में पढ़ने भेजा गया। सोलह वर्ष की आयु तक इन्होंने उर्दू व फारसी भाषाएं सीख ली थी। विवाह के बाद सोहन सिंह संतानहीन रहे तथा इन्हें शराब का व्यसन लग गया। यहां तक कि इन्होंने अपनी सम्पत्ति भी शराब में लुटानी शुरू कर दी। एक बार इनकी प्रसिद्ध संत बाबा केशव सिंह से भेंट हुई। उनकी प्रेरणा से इन्होंने शराब का व्यसन त्याग दिया तथा राष्ट्रवाद की ओर इनका ध्यान गया।

1906—1907 के एंटी कोलोनाइजेशन बिल के विरोध में सोहन सिंह ने सभाएं आयोजित की तथा पंजाब में मजदूरों के हितों के लिये भी काम करना शुरू किया। फरवरी 1909 में ये बेहतर आजीविका की खोज में अमेरिका रवाना हो गये तथा 04 अप्रैल 1909 को सएटल पहुँच गये। वहाँ इन्होंने एक टिम्बर मिल में मजदूर के रूप में काम करना शुरू कर दिया। उस समय अमेरिका के पश्चिमी तट पर भारतीय मजदूर काफी संख्या में आ रहे थे क्योंकि एक तो उत्तर भारत भारी आर्थिक मंदी से गुजर रहा था, दूसरे कनाडा की सरकार ने अपने यहाँ भारतीय मजदूरों की संख्या रोकने के लिए व उनके राजनैतिक अधिकार छीनने के लिये कानून लागू करने शुरू कर दिये थे। सिख समुदाय ने भारत में काफी समय से ब्रिटिश शासन का साथ दिया था अतः इन्हें बाहर भी बेहतर व्यवहार की आशा थी। तब तक पी.एन. खानखोजे ''इण्यिन इंडिपेंडेंस लीग'' की स्थापना कर चुके थे। सोहन सिंह इस संस्था के क्रार्यक्रमों में भाग लेने लगे। तब लाला हरदयाल का अमेरिका दौरा हुआ जिसमें उन्होंने भारतीयों को राष्ट्रवादी व्याख्यान दिये। लाला हरदयाल का कहना था कि जब तक भारतवर्ष पराधीन है किसी भी भारतीय को विदेश में सम्मान की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। लाला हरदयाल के दौरे से अमेरिका के पूर्वी तट पर चल रहे बौद्धिक आंदोलन व पश्चिमी तट पर चल रहे जमीनी संघर्ष दोनों को बल मिला। 1913 की गर्मियों में कनाडा व अमेरिका में रह रहे भारतीयों के प्रतिनिधियों ने स्टॉकहोम (स्वीडन) में एक सभा की तथा ''पैसिफिक कोस्ट हिन्दुस्तान एसोसिएशन'' के गठन का निर्णय लिया। सोहन सिंह को इस संस्था का अध्यक्ष व लाला हरदयाल को मंत्री बनाया गया। इसमें भारतीय मजदूरों के अलावा करतार सिंह सराभा, तारकनाथ दास व विष्णु गणेश पिंगले भी थे। ऑक्सफोर्ड, विएना, वाशिंगटन व संघाई में इस संस्था की सभाएं आयोजित की गई। देखते ही देखते राष्ट्रवाद व ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति की बातें इस संगठन में होने लगी तथा यह गदर आंदोलन में बदल गया जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सत्ता को भारत से उखाड़ फेंकना था। ये क्रान्तिकारी लोग थे जो कांग्रेस की प्रार्थना पत्र

राजनीति के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के पक्षधर थे। इनका इरादा भारतीय सैनिकों में ब्रिटेन के प्रति विद्रोह की भावना पैदा करने का था। इसके लिये नवम्बर 1913 में सैन फ्रांसिस्को में युगांतर आश्रम प्रैस की स्थापना की गई जिससे ''गदर की गूंज'' नामक अखबार निकलता था। तभी कोमागाटामारू की घटना हो गई, जिसमें 376 कनाडा जाने वाले यात्रियों में से मात्र 20 को कनाड़ा में उतरने दिया गया। शेष(जिनमें से अधिकांश पंजाब से आने वाले सिख थे) को वापस पंजाब भेज दिया गया। वास्तव में कनाडा का राजनैतिक वर्ग भारतीय मजदूरों को कनाडा नहीं आने देना चाहता था। कलकत्ता पहुँचने पर जहाज के यात्रियों को ब्रिटिश अधिकारियों ने निगरानी में ले लिया क्योंकि विश्व यद्ध शुरू हो चुका था। 19 यात्री पुलिस की गोली से बज–बज बंदरगाह पर मारे गये तथा अधिकांश पूरे विश्वयुद्ध के दौरान बंदी रहे। सोहन सिंह ने जहाज के यात्रा–मालिक गुरदीत सिंह को स्वयं हथियारों की पेटियां दी थी।

यूरोप में युद्ध छिडने से गदर क्रान्ति को बल मिला। सोहन सिंह पहले ही जर्मनी में रह रहे क्रान्तिकारियों व दक्षिणी–पूर्वी एशिया के भारतीयों के सम्पर्क में थे। युद्ध शुरू होते ही सोहन सिंह एस.एस. नामसांग नामक जहाज में भारत रवाना हो गये ताकि क्रान्ति का नेतृत्व कर सकें। पर ब्रिटिश सरकार को पहले ही इसकी गुप्त सूचना मिल चुकी थी तथा आते ही 13 अक्टूबर 1914 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पूछताछ के लिये इन्हें कलकत्ता से लुधियाना ले जाया गया। फिर उन्हें मुलतान सेन्ट्रल जेल में रखा गया तथा लाहौर षड्यन्त्र केस में सम्पत्ति जब्त व फाँसी की सजा हुई। बाद में फाँसी की सजा को कालेपानी की उम्रकैद में बदल दिया गया। सोहन सिंह 10 दिसम्बर 1915 को अण्डमान जेल पहुँचे तथा वहां इन्होंने कई भूख हड़तालें की ताकि राजनैतिक कैदियों को बेहतर सुविधायें मिल सकें। 1921 में इन्हें कोयम्बटूर जेल लाया गया तथा वहाँ से येरावदा जेल। येरावदा में इन्होंने सिख कैदियों के पगड़ी पहनने के अधिकार के लिये फिर भूख हड़ताल की। तब 1927 में इन्हें लाहौर जेल भेज दिया गया। यहाँ जून 1928 में मजहबी सिखों के तथाकथित उच्च बिरादरी वाले सिखों से अलग खाना खिलाने के विरोध में इन्होंने फिर भूख हड़ताल की। अन्ततः इन्हें जुलाई 1930 में रिहा कर दिया गया।

रिहा होने के बाद सोहन सिंह ने किसान सभाओं के माध्यम से देश में मजदूर आंदोलनों को मजबूत किया तथा गदर क्रान्तिकारियों की रिहाई के लिये काम किया। द्वितीय विश्वयुद्ध होने पर इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया तथा राजस्थान के देवली कैम्प में जेल में रखा गया। 1945 में इन्हें रिहा किया गया और ये फिर मजदूर आंदोलनों में भूमिका निभाने लगे। आजादी के बाद मजदूर आंदोलनों के कारण 31 मार्च 1948 से 08 मई 1948 तक इन्हें फिर जेल में रखा गया। जब अगली बार इन्हें हिरासत में लिया गया तो प्रधानमंत्री नेहरू के निर्देश पर इन्हें छोड़ा गया। तब भी सोहन सिंह देश में मजदूर आंदोलन को मजबूत करते रहे व गरीबों की लडाई लड़ते रहे। फिर सोहन सिंह बीमार रहने लगे तथा 21 दिसम्बर 1968 को 98 की अवस्था में इनका अमृतसर में न्यूमोनिया से देहान्त हो गया।

सोहन सिंह ऐसे क्रान्तिकारी थे जिन्होंने लगभग 20 वर्ष जेल में बिताएं तथा जेल से भी क्रान्ति का संदेश दिया। भारत के किसानों व मजदूरों के हितों की लडाई के लिये भी इन्हें याद किया जाता है।

हनुमान जी का शास्त्रीय वीरभाव

—ईश्वरी प्रसाद प्रेम जी

रावण के अन्तःपुर को देखकर भी जब हनुमान् को सीता का पता न लगा, तो उन्होंने विचार किया कि सीता का मिलना तो अब कठिन है, इसीलिये किष्किन्धा को लौटना चाहिए। यह विचार अभी उठने भी न पाया था कि उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें धिक्कारा, कि हनुमान्! तुमको वीर कहलाते हुए क्या यह कायरता और पुरुषार्थ रहित विचार शोभा देते हैं? क्या तू योद्धा और वीर कहलाने के योग्य रहेगा? नहीं! नहीं!! इस विचार और निराशा को छोड़कर उत्साहपूर्वक सीता जी को खोजकर! निःसन्देह तू कृतकार्य होगा, क्योंकि अनिर्वेद अर्थात् पुरुषार्थ सब सिद्धियों का मूल है—

अनिर्वेदः श्रियो मूलम्निर्वेदः परं सुखम।
मूयस्तत्र विचेश्यामि न यत्र चिचयःकृतः।
सु० १२।१०

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेशु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्मयज्ञ करोति सः।।
सु० १२।११

तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टऽहमुत्तमम्।
अष्टांश्च विचेश्यामि देशान् रावणपालितान्।।
सु० १२।१२

तब महावीर हनुमान् ने निश्चय कर लिया कि अब मैं उत्साहपूर्वक यत्न करता हुआ न केवल एक दो स्थानों को देखूंगा, किन्तु रावण—शासित सब देशों को ढूंढूंगा।

इस निश्चय के पीछे हनुमान ने कई दिन तक अनेकों देशों तथा अनेक जाति की स्त्रियों को कहीं विमान पर चढ़ कर, कहीं अन्दर जाकर, कहीं भवनों के ऊपर चढ़कर, कहीं किसी ओट में बैठकर देखा। जब फिर भी सीता का समाचार न मिला, तब उनको चिन्ता हुई, कि सम्पाती के अनुमानानुसार सीता वहाँ नहीं होगी। या तो रामबाणों के भय से शीघ्र दौड़ते हुए रावण के विमान से सीता मार्ग में गिर पड़ी या उस सुकुमारी आर्य देवी का हृदय राम के वियोग में सागर के डरावने रूप को देखकर भयाक्रन्त हो गया और वह मर गई या इस उग्र बलधारी रावण के भुजाओं की पीड़ा को सह कर उसने अपना जीवन त्याग दिया, अथवा इस तुच्छ बुद्धि ने उसे बन्धु हीन देखकर अपने शील की रक्षा के प्रतिकूल समय में भक्षण कर लिया अथवा दुष्ट रावण की आज्ञा से इन राक्षसनियों ने खा डाली होगी अथवा रावण के किसी अति गुप्त स्थान में पिंजरे में मैना की भांति वह कैद होगी अन्यथा वह राम—पत्नी जानकी रावण के वश में किस प्रकार आ सकती है? दुःख की बात है कि बिना निश्चत व प्रमाण के एक पत्नीव्रती राम को मैं कैसे बता सकूंगा कि वह नष्ट व प्रनष्ट है या मर गई है? इनमें से जो कुछ भी मैं कहूंगा, वह सदोष होगा। यदि सीता को बिना देखे ही मैं किष्किन्धा चला गया तो मेरा यह पुरुषार्थ किस काम आयेगा और समुद्र पार करने का क्या फल होगा तथा मुझे सुग्रीव तथा राम—लक्ष्मण क्या कहेंगे?

यदि मैं जाकर कहूँ कि ''मैंने सीता नहीं देखी'' तो इस कटु और इन्द्रिय सन्तापक वाक्य को सुनकर राम अपने प्राणों को त्याग देंगे और राम की मृत्यु को सुनकर उनके स्नेही भाई लक्ष्मण भी जीते न रहेंगे। इस प्रकार राम—लक्ष्मण की मौत सुनकर भरत के मरने को देखकर, शत्रुघन प्राण छोड़ देंगे। इन सब पुत्रों के परलोक वास को जानकर इनकी माताएं भी

इस लोक में न रहेंगी। राम की इस दशा को देखकर कृतज्ञ तथा सत्य–प्रतिज्ञ सुग्रीव भी मर जायेंगे और सुग्रीव की मौत को देखकर उसकी पतिव्रता स्त्री ''रुमा'' और अंगद की माता तारा भी प्राण त्याग देंगी। इतने घोर संकट के हो जाने पर मेरे सहस्त्रों जातीय बन्धु भी विष खाकर, समुद्र में कूदकर अथवा आग में जलकर मर जायेंगे। इसलिये मैं किष्किन्धा में जाकर इतने महा विनाश और रोदन का कारण कदापि न बनूंगा। हाँ, यदि सीता न मिली तो मैं समुद्र के किनारे चिता बनाकर प्रचण्ड अग्नि में प्रवेश करूंगा या समुद्र में डूब जाऊंगा या अपना शरीर पक्षियों को अर्पण कर दूँगा अथवा तापस होकर वृक्ष–मूल में बैठा जीवन व्यतीत कर दूंगा परन्तु सीता को देखे बिना पीछे नहीं लौटूंगा। मैं आर्य वीरों के पुरुषार्थ की तरह रावण को ही मार दूंगा या उसे उठाकर समुद्र के ऊपर–ऊपर ही राम के पास ले जाऊंगा। जब तक मैं यशस्विनी राम–पत्नि को न देख लूंगा, तब तक लंका के स्थानों को ढूढूंगा अथवा यावज्जीवन इन्द्रियों को वश में रखकर आहार–व्यवहार को नियम से निबाहता हुआ, यहाँ ही रहूंगा, ताकि मेरे वहां जाने से जिन अनर्थों के होने की आशंका है, वे न हों।

अशोक वाटिका में प्रवेश

इस प्रकार का विचार कर हनुमान ने सोचा कि लंका में एक बड़ी वाटिका ''अशोक वाटिका'' है उसको भी देख लूं, कदाचित् वहाँ ही सीता का पता मिले। यह विचार कर हनुमान् अशोक वाटिका में चले गये। वहाँ विचरते हुए उन्होंने अनेक प्रकार की रजत, स्वर्ण, और मणि मूंगा आदि से जटित पृथिवियों को देखा। सब ऋतुओं में फलने वाले वृक्ष और निर्मल सुशीतल जल बहाने वाली नदियाँ, नाना पक्षियों से युक्त सरोवर तथा बहुत से कृत्रिम पर्वत तथा पर्वतीय पदार्थों को देखा। वहाँ उन्होंने सोना, चाँदी तथा मणि पत्थर की वेदियों से भूषित और नाना वर्ण तथा अनेकों गन्ध वाले पत्र–पुष्पों से भरी लताओं से वेष्ठित वृक्ष देखे। बहुत से ऐसे वृक्षों को भी देखा, जिनकी चमक–दमक सुवर्ण के स्तम्भों व नक्षत्रों के समान थी और जिनके मध्य पर चलने से हनुमान् पर इतनी प्रभा पड़ी कि हनुमान अपने आपको सोने की देह वाला मानने लगे।

तेशां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः।
अमन्यत तदा वीरः कांच्नोऽस्मीति सर्वतः।
सु० १४।३६

इन वृक्षों और इनके फलों को देखकर हनुमान् विस्मित हुए इधर–उधर सीता की जांच के लिए फिरने लगे। बड़ी देर तक भी सीता का पता न पाकर वह एक ऐसी नदी पर पहुँचे जिसका जल बड़ा शुद्ध और पवित्र था तथा अनेकों प्रकार के सहस्त्रों पक्षी नाना स्वरों से उसकी शोभा बढ़ा रहे थे।

सीता की ईश्वर–निष्ठा

इस नदी पर पहुँचकर हनुमान् की निराशा की अंधियारी बड़ी सीमा तक दूर हो गई और उन्हें आशा का पुण्य प्रकाश निकट प्रतीत होने लगा। यहाँ पहुँचकर उन्होंने सोचा कि वह राजमहिशी तथा राजकन्या नित्य शुद्ध वायु सेवन की अभ्यासिनी है, अतः प्रातः सायं यहाँ भ्रमण करने के लिये अवश्य आयेगी और दूसरा सबसे बड़ा विचार जो कपिराज के मन में आया वह यह था कि उस समय प्रत्येक आर्यकुमारी व कुमारिकाओं के जीवन में नित्यप्रति सन्ध्या करना एक अनिवार्य अंग था। अतः हनुमान् को निश्चय हो गया किः–

सन्ध्याकालमनःश्यामा ध्रुवमेश्यति जानकी।
नदी चेमाँ शुभजलाँ सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।।
सु० १४।४६

तभ्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता।।
सु० १४।५०

यदि जीवति सा देवी ताराधिपतिभानुना।
आगमिश्यति सावश्यमिमाँ शीतजलाँ नदीम्।।
सु० १४।५१

''सन्ध्या काल में सन्ध्या करने के लिये जानकी इस शुभ जल वाली नदी पर निश्चय ही आएगी क्योंकि उस शुभ वैदिक–पथ पर चलने वाली, महाराज राम की परम प्रिया जानकी जी के लिये यह नदी और वाटिका सब प्रकार से योग्य है। यदि जानकी जीती है तो इस शीतल जल वाली नदी पर अवश्य ही आयेगी।''

सीता की दशा का वर्णन

यह विचार हनुमान जब आगे बढ़े तो क्या देखते हैं, कि एक अति कृश स्त्री मलिन भूषणादिकों को धारण किये, आँसू बहाती चली आती है और उसकी सुवर्ण समान देह, शोकरूपी धूम से अग्नि ज्वालावत् धूसरित हो गई है, तथा उस स्त्री की प्रत्येक चेष्टा से पति–व्रत धर्म की किरणें निकल रही हैं।

इसे देखकर हनुमान् ने चित्त में विचारा कि उपवास से कृश, पति वियोग से उदासीन और मन–मलीन सचमुच यह सीतादेवी ही है जिसके लिये राम अहोरात्रि शोक, करुणा और दया से युक्त होते हैं तथा जिसके लिये उन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया और अब भी युद्ध के लिये उद्यत हैं तथा जिसके लिये मैंने सागर पार कर लंका में प्रवेश का द्वार देखा। हाँ! है भी सच। इस देवी के निमित्त जितने कष्ट उठाये जायें वह इसके गुणों के आगे तुच्छ हैं। यदि इसके लिये जगत् भर के रत्न इकट्ठे कर दिये जायें तो भी इसके आदर्श की उपमा प्राप्त नहीं कर सकते।

यह सती इस पराधीन अवस्था में भी केवल पविव्रत धर्म को दृढ़ रखती हुई अपने पूज्य पति राम की भक्ति के लिए सारे सुख भोगों को त्याग कर वन के कष्टों का ध्यान न कर, निर्जन वन में निवास करती है। अवश्यमेव इसके पुनः प्राप्त कर लेने से श्रीराम को वैसी ही प्रसन्नता प्राप्त होगी जैसी कि भ्रष्ट राजा को पुनः राज्य प्राप्त करने से होती है।

धन्य है इसका पति प्रेम, जो यह काम, भोग, राज्य, इष्ट–मित्र तथा बन्धुजनों से हीन होकर भी, न तो राक्षसियों की ओर देखती है, और न इन फल–फुलों को निहारती है, किन्तु एक चित्त होकर सदा राम का ही चिन्तन कर रही है।

हां, क्यों नहीं, जब कि यह आर्य पुत्री है और आर्य शास्त्रों के जानने वाली है। आर्य शास्त्र बताते हैं किः–

भर्त्ता नाम परं नार्या शोभनं भूषणादपि।
एशा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते।।
सु० १६।२६

''पति ही स्त्रियों का परम भूषण है। पति से वियुक्त स्त्रियां शोभा योग्य होने पर भी शोभाहीन हो जाती हैं।''

इस प्रकार दीनमुख होने पर भी राम के तेज से उज्जवलित, बन्धुओं की रक्षा से हीन होने पर भी अपने शील की रक्षा से रक्षित सीता को देखकर हनुमान आनन्दाश्रुओं की वर्षा करने लगे तथा अपनी यात्रा की सिद्धि के लिये सुख को अनुभव कर और राम के गुणों को स्मरण कर उनको मन ही मन प्रणाम करने लगे।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

—डॉ० भगवान दाश

गंजापन : गंजापन की बीमारी किसी एक स्थान में भी हो सकती है या साधारण तौर पर सारे शरीर में भी। ज्यादातर यह बीमारी सिर में गोल घेरेवाले स्थान मे देखी जाती है या दाढ़ी, पलकों, भौहों, बगल और जांघों आदि के बाल भी नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेद में इस रोग को खलित्य के नाम से जाना जाता है।

ऐसा माना जाता है कि बहुत अधिक चिंता, दुःख, शोक और गुस्से से इस रोग का जन्म होता है। ऐसा भी कहा जाता है कि एक तरह के रोगकारक जीवाणुओं के कारण ही सिर और शरीर के दूसरे अंगों के बाल नष्ट होते हैं।

वैसे तो गंजेपन से किसी भी प्रकार का शारीरिक कष्ट और दर्द नहीं होता, परंतु व्यक्ति मानसिक रूप से परेशान हो जाता है। रोगी में एक प्रकार की हीन—भावना घर कर जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि गंजेपन के कारण रोगी की सुंदरता पर बुरा असर पड़ता है। अर्थात् इस रोग के कारण रोगी कुरूप—सा लगने लगता है।

उपचार : इस रोग की चिकित्सा के लिए भृंगराज या भांगरा नामक औषधि द्रव्य सबसे उत्तम माना गया है। प्रायः चिकित्सक इस द्रव्य से तैयार किए गए महाभृंगराज तेल अथवा नीली भृंगादि तेल लगाने की सलाह देते हैं। नहाने से करीब एक घंटा पहले सिर की त्वचा पर इस तेल से धीरे—धीरे मालिश करनी होती है। इस मालिश से सिर में उगे हुए सभी कमजोर बाल गिर जाते हैं। यही कारण है कि शुरू में सिर के बाल पहले से भी पतले दिखाई देते हैं और ऐसा लगता है कि गंजापन बढ़ गया है। परंतु रोगी को इससे डरना नहीं चाहिए। वैसे तो यह ज्यादा अच्छा होगा कि यदि पहले सिर के पूरे ही बाल कटवा दिए जाएं ओर फिर सिंर पर तेल की मालिश अच्छी प्रकार की जाए। इस तेल की मालिश लगातार छः महीनों तक करते रहनी चाहिए। इससे अवश्य लाभ होता है। तेल लगाने के साथ—साथ रोगी को भांगरे का चूर्ण एक चम्मच की मात्रा में खाने को देना चाहिए। यह चूर्ण शहद में मिलाकर दिन में दो बार खाली पेट ही देना चाहिए।

आयुर्वेदिक चिकित्सकों में इस रोग की चिकित्सा में हाथी दांत का प्रयोग भी बहुत लोकप्रिय है। हाथी दांत के छोटे—छोटे टुकड़े बनाकर भस्म तैयार की जाती है। इस भस्म को घी अथवा शहद के साथ रगड़कर प्रतिदिन गंजे स्थान पर लगाना चाहिए। यदि यह भस्म रात के समय लगाई जाए, तो अधिक अच्छा रहता है। क्योंकि इससे औषधि रातभर सिर की त्वचा के साथ लगी रहती है और अधिक प्रभावकारी सिद्ध होती है।

इन औषधि के अलावा कुछ संक्षोभक (जलन, खारिश, आदि करनेवाली) औषधियों का प्रयोग भी इस रोग में किया जाता है। यदि छोटी आयु में ही गंजापन हो, तो ये दवाइयां बहुत अच्छा काम करती हैं। इनमें अश्वकंचुक रस नामक औषधि का प्रयोग प्रायः वैद्य लोग करते हैं। मूल रूप से यह रेचक(दस्त लानेवाली) औषधि है। इसकी गोलियों को पीसकर शहद के साथ मिलाया जाता है। फिर इस पेस्ट को दोपहर के समय सिर पर लगाकर सूखने देना

चाहिए और बिना धोए ही सो जाना चाहिए। यह औषधि लगाने से शुरू में त्वचा कुछ लाल–सी हो जाती है तथा जलन व खारिश भी हो सकती है। परंतु धीरे–धीरे बाल उगने लगते हैं।

आहार : बाल गिरने का सबसे मुख्य कारण कमजोरी है। अतः रोगी को पोषक पदार्थों का सेवन करना चाहिए। घी, मक्खन, दूध, दालें तथा इसी प्रकार के अन्य प्रोटीनयुक्त खाद्य–पदार्थों का सेवन उचित रहता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि लिवर पर ज्यादा बोझ न पड़े। इसलिए रोगी को तले हुए खाद्य–पदार्थों को बिल्कुल नहीं खाना चाहिए।

अन्य आचार–व्यवहार : जैसा कि पहले बताया गया है, गंजेपन का सबसे प्रमुख कारण चिंता है। अतः रोगी को चाहिए कि वह अपनी मानसिक शांति बनाए रखे और चिंता, फिक्र आदि से दूर रहे। रात में जागना, अधिक मैथुन करना तथा मल, मूत्र आदि स्वाभाविक वेगों को रोकना बहुत नुकसानदायक है। अतः इन सबसे बचकर रहना चाहिए। रोगी को यह ध्यान रखना जरूरी है कि उसे कब्ज न रहे, क्योंकि ऐसा प्रायः देखा गया है कि कब्ज होने पर अच्छी नींद नही आती। नींद ठीक न आने पर मानसिक तनाव–सा बना रहता है। और मानसिक तनाव गंजेपन को जन्म देता है। अतः ठीक प्रकार से पेट साफ रखने के लिए रोगी को प्रतिदिन प्रातः खाली पेट एक गिलास पानी अवश्य पीना चाहिए। प्रातः अथवा सायंकाल 2–3 किलोमीटर सैर करना रोगी के लिए बहुत आवश्यक है।

गंजेपन को दूर करने के लिए अखबारों में अनेक प्रकार के तेलों के इश्तिहार आते रहते हैं। इनमें अधिकतर इश्तिहार बहुत बढ़ा–चढ़ाकर दिए जाते हैं। इसलिए रोगी को चाहिए कि बिना सोचे–समझे इनका प्रयोग न करने लग जाए। प्रयोग से पहले डॉक्टर से सलाह लेना जरूरी है।

बाल सफेद होना : सामान्यतः बालों का सफेद होना या पकना वृद्धावस्था की निशानी मानी जाती है। परंतु अनेक बार युवावस्था से ही बालों का सफेद होना आरंभ हो जाता है। इसे एक रोग या विकार माना जाता है। आयुर्वेद में इसे पलित्य कहा गया है।

आयुर्वेद के अनुसार बहुत अधिक उत्तेजना, गुस्सा और मानसिक दबाव होने से बाल सफेद होने लगते हैं। पैत्तिक प्रकृतिवाले व्यक्ति के बाल जल्दी ही सफेद होने की संभावना अधिक होती है। पुराना जुकाम और साइनस जैसे रोगी होने पर तथा बाल धोने के लिए गर्म जल का प्रयोग करने वाले व्यक्ति भी इस रोग का शीघ्र ही शिकार हो जाते हैं। अर्थात् ऐसे व्यक्तियों के बाल दूसरों की अपेक्षा जल्दी सफेद हो जाते हैं।

उपचार : बाल सफेद होने पर भृंगराज और आंवला नामक औषधियों का प्रयोग प्रचलित है। इन औषधियों को पकाकर तैयार किया गया तेल है–महाभृंगराज तैल। इस तेल का प्रयोग बाहरी तौर पर सिर में मालिश करने के लिए किया जाता है। इन दोनों के चूर्ण का प्रयोग भी खाने के लिए किया जाता है। इसे एक छोटे चम्मच की मात्रा में दूध के साथ दिन में तीन बार सेवन कराना चाहिए। नीम के बीजों से तैयार किए गये तेल की नस्य(नसवार) लेनी चाहिए। यह नस्य दिन में दो बार और लगभग एक महीने तक लेनी चाहिए। इसके साथ रोगी को भोजन के रूप में केवल दूध पीना चाहिए।

इस रोग के लिए भल्लातक (भिलावा) नामक औषधि द्रव्य भी बहुत प्रयोग में लाया जाता है। यह द्रव्य शरीर पर कुछ विषैला प्रभाव डाल सकता है। अतः सेवन करने से पहले

सावधानीपूर्वक इसका शोधन करना आवश्यक है। साधरणतः इसका प्रयोग लेह(मीठी चटनी जैसी) बनाकर किया जाता है। इसे एक चम्मच की मात्रा में दिन में दो बार दूध के साथ देना चाहिए।

आहार : उपरिलिखित औषधियां तभी लाभ पहुंचाती हैं यदि रोगी वैद्य द्वारा बताए गए परहेज आदि का पालन करें। जहां तक हो सके रोगी को केवल दूध और चीनी का सेवन करना चाहिए। नमक नहीं लेना चाहिए। दही तथा अन्य खट्टे पदार्थ भी ऐसे रोगी के लिए ठीक नहीं हैं। चटपटे, तिक्त, गर्म और मसालेदार खाद्य–पदार्थों का सेवन रोगी को नहीं करना चाहिए।

अन्य आचार–व्यवहार

रोगी को रात के समय अधिक देर तक जागते नहीं रहना चाहिए। उसे चिंता, शोक, परेशानी और उतावलेपन से भी बचना चाहिए। यदि रोगी जुकाम और साइनस रोगों से पीड़ित है, तो इनकी चिकित्सा बहुत शीघ्र और सावधानी से करनी चाहिए। बाल धोने के लिए ठंडे पानी का प्रयोग करना चाहिए। गर्म जल से तो बाल कभी नहीं धोना चाहिए।

योग महिमा

योग ऋत है, सत् है, अमृत है।
योग बिना जीवन जानो मृत है।।1।।

योग जोड़ है, वेदों का निचोड़ है।
योगासन का अंग, 'सूर्याय नमः', बेजोड़, है।।2।।

योग से मिटती हैं, आंधियां–व्याधियां।
मिटती हैं योग से, त्वचा की बीमारियां।।3।।

योग जीवन को जीने की, जड़ी–बूटी है।
योग ज्ञानामृत पीने की, खुली हुई टूटी है।।4।।

योग, दर्शन है, दिग्दर्शन है, करो ध्यान है।
यह पतंजलि का मनन, शोध और वरदान है।।5।।

योग ईश्वर से मिलने की, सर्वोत्तम सीढ़ी है।
ऋषियों ने इसे अपनाया, पीढ़ी दर पीढ़ी है।।6।।

योग गीत है, संगीत है, सरस वादन है।
योग बिन–खर्चे का, सबसे सस्ता साधन है।।7।।

योग आधार है, गीता आदि ग्रन्थों का।
योग आभार है, सरल सौम्य भक्तों का।।8।।

योग से ही होता चरित्र निर्माण, रक्षित होती संस्कृति।
योग से ही बनते संस्कार, विमल होती चित्तवृत्ति।।9।।

योग तारक है, आमरण दुःख निवारक है।
हर समस्या के समाधान का अचूक कारक है।।10।।

योग में निहित है, पूर्ण जीवन जीने की शक्ति।
योग से ही होंगे प्रभुदर्शन, बढ़ेगी आत्मिक शक्ति।।11।।

रोग, भोग, दुर्योग, मिटते हैं योग से।
होते हैं मोद, प्रमोद, विनोद सब योग से।।12।।

योग उलझे हुए सभी सवालों का जवाब है।
कांटों में भी महकता हुआ, मुस्कराता गुलाब है।।

प्रेषकः
पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री
शास्त्री भवन, 4-E, कैलाश नगर,
फाजिलका–152123 (पंजाब)
दूरभाष : 9463428299

शरीर नाशवान तथा आत्मा अविनाशी व अमर है : पं. नरेशदत्त आर्य

—मनमोहन कुमार आर्य

बुधवार दिनांक 11—9—2019 को प्रातः 8.00 बजे से वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून के मंत्री श्री प्रेमप्रकाश शर्मा जी के निवास स्थान पर 10 दिवसीय अथर्ववेद पारायण यज्ञ का समापन हुआ। यह पारायण यज्ञ सोमवार 2 सितम्बर, 2019 से आरम्भ हुआ था। प्रातः व सायं दोनों समय यज्ञ होता था जिसमें पं० नरेशदत्त आर्य की श्री कृष्ण जी के जीवन पर भजनों के माध्यम से कथा होती थी। कथा में ऋषि दयानन्द जी के जीवन के प्रसंगों सहित आर्यसमाज के सिद्धान्तों की चर्चा भी की जाती थी। यज्ञ की ब्रह्मा द्रोणस्थली कन्या गुरुकुल, देहरादून की आचार्या डा० अन्नपूर्णा जी थी। उनकी चार शिष्याओं ने यज्ञ में अथर्ववेद की संहिता पुस्तक से मन्त्रोच्चार किया। श्री प्रेमप्रकाश शर्मा जी सहित उनके अनेक परिवारजन यजमान बने। दून विहार कालोनी, राजपुर रोड के निवासी श्री प्रेमप्रकाश शर्मा जी के निमंत्रण पर इस यज्ञ में बड़ी संख्या में सभी कॉलोनीवासी तथा आर्यजन कार्यक्रमों में सम्मिलित होते रहे। समापन दिवस पर आयोजन की समाप्ति के पश्चात सभी आगन्तुक लोगों के लिये प्रीतिभोज की व्यवस्था भी की गई थी। वैदिक साधन आश्रम तपोवन के स्टाफ के सदस्यों सहित देहरादून आर्यसमाज से जुड़े लोग भी अथर्ववेद पारायण यज्ञ में सम्मलित होते रहे।

यज्ञ की पूर्णाहुति होने पर यज्ञ की ब्रह्मा आचार्या डा० अन्नपूर्णा जी ने यजमान श्री प्रेमप्रकाश शर्मा व उनके परिवार के सभी सदस्यों को अपनी शुभकामनायें दीं। राष्ट्रीय प्रार्थना के मन्त्र से भी यज्ञ में आहुति दी गई। डा० अन्नपूर्णा जी ने कहा कि परमात्मा हमारे देश को दुःख दारिद्रय से रहित तथा सुख व समृद्धि से सम्पन्न राष्ट्र बनाये। हमारा राष्ट्र उन्नति व यश को प्राप्त हो तथा अपने सभी शत्रुओं पर हम व हमारा राष्ट्र विजय प्राप्त करे। हमारे देश के देशभक्त नेता और प्रधानमंत्री जी के कुशलक्षेम, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य तथा सफलताओं के लिये भी यज्ञ में आहुति देने के साथ ईश्वर से प्रार्थना की गई। विदुषी आचार्या डा० अन्नपूर्णा जी ने कहा कि परमात्मा हमारे सभी यजमानों को बल, बुद्धि, शक्ति व दीर्घायु प्रदान करे। हमारे यजमान अदीन तथा स्वावलम्बी हों। वह जीवन में दैनिक यज्ञ करते रहें। उन्होंने कार्यक्रम में उपस्थित सभी श्रद्धालुओं को अपना आशीर्वाद दिया। आचार्या जी ने कहा कि जो गुरुओं का आदर तथा सम्मान करते हैं उनकी आयु, विद्या, यश और बल में वृद्धि होती है। इसलिये सभी को अपने बड़ों का आदर व सम्मान अवश्य करना चाहिये। आचार्या जी ने आगे कहा कि हमने दस दिनों तक इस अथर्ववेद पारायण यज्ञ में तप किया है। गर्मी का मौसम था। कभी कभी वर्षा भी हो जाती थी। विद्युत जाने से पंखे आदि भी नहीं चलते थे। ऐसी स्थिति में सबने यज्ञ को पूरी श्रद्धा से सम्पादित किया है। आचार्या जी ने कहा कि इस तप का परमात्मा आप सबको सुख रूपी फल देंगे।

यज्ञ की ब्रह्मा आचार्या डा. अन्नपूर्णा जी के आशीर्वाद के बाद कन्या गुरुकुल की चार कन्याओं ने समवेत स्वरों में एक भजन गाया जिसके बोल थे 'वेदों का यह सार ऋषियों ने निकाला है, मनुष्य का तन एक सुन्दर यज्ञशाला है।। भाग्य से नर तन मिला है यज्ञ करने के लिये। ईश्वर के आनन्द सागर में उतरने के लिये। पथिक यहां आनन्द दुनियां से निराला है। मनुष्य का तन एक सुन्दर यज्ञशाला है।।' इन्हीं कन्याओं ने एक और भजन प्रस्तुत किया जिसके बोल थे 'जगत के रंग क्या देखूं तेरा दीदार काफी है। करूं मैं प्यार किस किस से प्रभुवर तेरा ही प्यार काफी है।।' डा. अन्नपूर्णा जी ने कहा कि यह ऋषि दयानन्द जी की ही देन है कि आज वेद विदुषी नारी यज्ञ की ब्रह्मा बनती है। मध्यकाल व उसके बाद नारियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। गुरुकुल की कन्याओं ने तीसरा भजन सुनाया जिसके बोल थे 'तुमने किसी पहाड़ को रोते हुए देखा है? तुमने किसी पहाड़ को पिघलते हुए देखा है? छोटी बहिन की मौत ने सबको बड़ा सताया। आंखों से अपनी एक भी आंसु नहीं बहाया। चाचा की मौत पर तो दरिया निकल गया है। तुमने किसी पहाड़ को पिघलते हुए देखा है।।' डा. अन्नपूर्णा जी ने ऋषि दयानन्द जी के समय में स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण किया। उन्होंने कहा कि माताओं की स्थिति देख कर ऋषि दयानन्द रोये थे। आचार्या जी ने कहा हम ऋषि दयानन्द को कोटि–कोटि नमन करते हैं।

सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पंडित नरेशदत्त आर्य ने श्री कृष्ण कथा का समापन करते हुए एक भजन प्रस्तुत किया। भजन के बोल थे 'भक्ति करो उसी की जिसने जगत रचाया। कण–कण में जो रम रहा है फिर भी नजर न आया।।' पंडित जी ने श्रोताओं से पूछा जी कि श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश क्यों दिया था? उन्होंने स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया कि हम उन दिनों वेद और उपनिषदों के ज्ञान को भूलते चले जा रहे थे। इसलिये श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को वेद और योग शास्त्र के प्रमाण देकर उसका अज्ञान दूर किया था। पंडित जी ने कहा कि लोग गर्म चीज को छूकर देखते हैं कि वह गर्म है अथवा नहीं। कृष्ण जी के समय में लोग अपने मुंह बन्द करके बैठे हुए थे। कृष्ण जी ने अपने मुंह को खोलकर, उन्हें उपदेश देकर, उनके अज्ञान को दूर किया था। ऋषि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर सत्यासत्य का निर्णय हो जाता है। पंडित जी ने कहा कि जो विविध प्रकार के लोक व लोकान्तरों की रचना करता है और उन्हें प्रकाशित करता है वह ईश्वर विराट है। परमात्मा ब्रह्माण्ड के सभी अनन्त सूर्यों को अपने प्रकाश से प्रकाशित कर रहा है। उन्होंने कहा कि सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द ने ईश्वर के 108 नाम लिखे हैं। कृष्ण जी ने उसी ईश्वर के विराट स्वरूप का अर्जुन को दर्शन कराया था।

पं० नरेशदत्त आर्य ने कहा कि आज लोगों को मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे तथा चर्च आदि में जाते हुए डर लगता है। उन्होंने बताया कि वर्तमान में सभी मतों के अनुयायी सत्य आचरण से दूर हैं। पं० नरेशदत्त आर्य ने एक भजन सुनाया जिसके बोल थे 'जग में वेदों की जब तक निशानी रहे, ऋषि दयानन्द की अमर ये कहानी रहे। प्यारा ऋषिवर प्यारा ऋषिवर।।' नरेशदत्त जी ने श्री प्रेमप्रकाश शर्मा जी के संकल्प एवं कार्यों की प्रशंसा की और कहा कि इन्होंने अकेले इतना बड़ा अथर्ववेद पारायण यज्ञ रचा कर एक प्रेरणादायक महान

कार्य किया है। मैं भी इनकी प्रेरणा से इनके समान ऐसे कार्य करने का प्रयत्न करूंगा। इसके साथ ही उन्होंने शर्मा जी सहित यज्ञ की ब्रह्मा, सभी यजमानों एवं श्रोताओं का धन्यवाद कर अपनी वाणी को विराम दिया।

मुख्य यजमान श्री प्रेमप्रकाश शर्मा जी ने भी श्रोताओं को सम्बोधित किया। उन्होंने अथर्ववेद यज्ञ तथा कृष्ण जी की कथा के निर्विघ्न सम्पन्न होने के लिये ईश्वर सहित यज्ञ की ब्रह्मा डा० अन्नपूर्णा जी, उनकी शिष्याओं, सहित पं० नरेशदत्त आर्य एवं उनके दो सहयोगियों का धन्यवाद किया। उन्होंने कहा कि पंडित नरेशदत्त आर्य ने श्री कृष्ण जी के चरित्र को ऋषि दयानन्द जी के चरित्र के साथ जोड़कर प्रस्तुत करके एक महनीय कार्य किया है। शर्मा जी ने कहा कि दयानन्द जी शायद कृष्ण जी से भी आगे थे। दयानन्द जी बाल ब्रह्मचारी थे तथा उनके विरोधियों ने उन्हें 17 बार विषपान कराया था। स्वामी दयानन्द ने बहुत ही विपरीत समय में देश का मार्गदर्शन किया और वैदिक धर्म एवं संस्कृति की विधर्मियों से रक्षा की। हम ऋषि दयानन्द के ऋणी हैं। हमारी मातायें एवं बेटियां पुरुषों के बराबर काम कर रही हैं। शर्मा जी ने अपने परिवार के सदस्यों का भी उनके इस धर्मयुक्त कार्य में सहयोग करने के लिये धन्यवाद किया। उन्होंने कहा कि हमने जो यह यज्ञ एवं कथा का आयोजन कराया है, इसमें हमारा अपना कुछ नहीं है। हमने जो कुछ किया है वह हमें ईश्वर का प्रदान किया हुआ था। ईश्वर ने ही यज्ञ की सब वस्तुयें बनाई हैं। यदि वह न बनाता तो हम यज्ञ न कर पाते। उन्होंने ईश्वर का कोटि–कोटि धन्यवाद किया। शर्मा जी प्रत्येक दिन अपने निवास पर प्रातः 8.00 बजे से यज्ञ करते हैं। उन्होंने सभी कालोनी निवासियों को अपने निवास पर यज्ञ में आमंत्रित किया। उन्होंने कहा कि यदि आप संकेत करेंगे तो हम आपको यज्ञ करना भी सिखायेंगे। हम आपके घर पर आकर यज्ञ की सभी वस्तुयें स्वयं लाकर भी यज्ञ कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि घर–घर में यज्ञ होने चाहिये। इससे लोग बीमार नहीं होंगे। शर्मा जी ने कहा कि सभी मत व पन्थ के लोग हमारे बन्धु हैं। मनुष्य को जैसी शिक्षा दी जाती है वह व्यक्ति वैसा ही बनता है। शर्मा जी, उनकी पुत्री, जामाता तथा दो दौहित्रों ने पंडित नरेशदत्त आर्य व उनके दो सहयोगियों को दक्षिणा व वस्त्र आदि देकर सम्मानित किया। इसी प्रकार यज्ञ की ब्रह्मा डा० अन्नपूर्णा जी और उनकी चार शिष्याओं को भी दक्षिणा एवं वस्त्र आदि से युक्त एक–एक बैग देकर सम्मनित किया गया।

वैदिक साधन आश्रम तपोवन के पुरोहित पं० सूरत राम जी ने भी श्रोताओं को सम्बोधित किया। वैदिक साधन आश्रम तपोवन से पधारे 88 वर्षीय साधक श्री ज्ञान चन्द जी ने कुछ कविता की पंक्तियों के माध्यम से जीवन विषयक उत्तम सन्देश दिये। उन्होंने कहा कि जो जलती रहे उसे आग कहते हैं। जब वह बुझ जाये तो उसे राख या खाक कहते हैं। जो अज्ञान के अन्धकार को मिटा दे उसे आर्यसमाज कहते हैं। इसके बाद श्री सत्यप्रिय जी साधक ने एक भजन सुनाया। आर्य पुरोहित पं० वेदवसु जी का अथर्ववेद के एक मन्त्र पर व्याख्यान हुआ। यज्ञ की ब्रह्मा डा० अन्नपूर्णा जी ने भी अपने आशीर्वचन कहे। शान्तिपाठ के साथ अथर्ववेद पारायण यज्ञ एवं श्री कृष्ण जी की कथा का समापन हुआ। इसके बाद सभी श्रोताओं ने विशेष भोजन का आनन्द लिया।

ब्रह्मचर्य

—आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

ब्रह्मचर्य कहते हैं उपस्थेन्द्रिय के संयम को, गुप्तेन्द्रिय के संयम को। शरीर में जो रज—वीर्य उत्पन्न हो, साधक को चाहिए, (योगिन व) योगी को चाहिए कि वह जी—जान से उस की रक्षा करे। उस की रक्षा के लिए वह सतत अन्य इन्द्रियों पर भी अपना पूर्ण नियन्त्रण रखे। अर्थात् वह अपनी आंखों से सदा भद्र स्थानों पर जाए, हाथों से सदा भद्र करे, वाणी से सदा भद्र बोले, रसना से सदा भद्र पदार्थों का सेवन करे, नासिका से सदा भद्र सूंघे, त्वचा से सदा भद्र स्पर्श करे, मन से सदा भद्र सोचे, बुद्धि से सदा भद्र विचारे। इस प्रकार जब कोई (साधिका व) साधक (योगिन व) योगी सदा अपनी चक्षु, श्रोत्र, रसना(जिह्वा), त्वचा, हस्त— पाद, मन, बुद्धि, चित्त आदि इन्द्रियों पर संयम रखेगा और अपना समय सदा स्वाध्याय, सत्संग, साधना और लोकोपकार में लगायेगा तो यह सब करते हुए धीरे—धीरे उसमें बड़ी पवित्र एवं ऊंची भावनाएं उत्पन्न होंगी, जो योगी को संसार के लिए निर्दोष बना देंगी।

इसके परिणाम स्वरूप फिर उस का संयम सहज हो जायेगा और उसके भीतर रहने वाले रज—वीर्य की रक्षा भी फिर सहज ही हो जायेगी। इस से उसकी अहिंसा में अत्यन्त निखार पैदा होगा और सब की उन में श्रद्धा बढ़ेगी, विश्वास बढ़ेगा। इसके विपरीत यदि कोई साधक—योगी हृदय से ब्रह्मचर्य का पालन न करे अर्थात् वह असंयमी रहे। खाने—पीने, सोने—जागने, हास—परिहास करने आदि में जो चंचल चित्त हो, अर्थात् इनके विषय में जो मर्यादाओं का अतिक्रमण करता हो तो वह फिर चाहे विद्वान हो चाहे संन्यासी हो, घर—परिवार में रहता हो व किसी आश्रम—मठ में व किसी वन—अरण्य में रहता हो, उससे जहां वह स्वयम् अपने लक्ष्य से च्युत होगा, पतित होगा, वहां उसके व्यवहारों से दूसरों को भी कष्ट होगा, हानि होगी, दूसरों की आशाओं और विश्वासों पर भी पानी फिरेगा। अर्थात् दूसरों की हिंसा भी होगी। अतः साधक को चाहिए कि वह इस विषय में प्रभु साक्षी में सदा सतर्क रहे। ऐसा करने से वह जहां अपने लक्ष्य को सिद्ध कर सकेगा, वहां वह अपनी अहिंसा के स्वरुप को भी दिव्य बना कर सब के स्नेह, सम्मान और श्रद्धा का पात्र बना सकेगा। यही इस ब्रह्मचर्य रूप यम का लक्ष्य है।

अपरिग्रह

—आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

परिग्रह कहते हैं—चहुं ओर से संग्रह करने को और अपरिग्रह कहते हैं चहुं ओर से संग्रह न करने को। साधक विषयों के संग्रह करने अर्थात् धन—संपत्ति को इकट्ठा करने, फिर उस की रक्षा करने अर्थात् उस को संभालने और फिर उस के नष्ट हो जाने, समाप्त हो जाने में तथा उस के संग में, उपभोग में, सर्वत्र हिंसा रूप दोष को देखकर उन विषयों को स्वीकार नहीं करता, यही अपरिग्रह है। कम से कम जिस से उसकी जीवनयात्रा पूरी हो सके, उतने मात्र का ही स्वीकार करना, उस से अधिक का स्वीकार न करना, यही अपरिग्रह का अभिप्राय है। साधक जब इस अपरिग्रह रूप यम का दिल से पालन करता है तो इससे वह अपनी अहिंसा के स्वरूप को निखारता हुआ सब के प्रेम और श्रद्धा का पात्र बनता है।

इस के विपरीत यदि वह संसारी जनों के समान धन, वैभव को संग्रह करता रहता है तो उसके उस संग्रह से तब उस समाज में जो अव्यवस्था उत्पन्न होती है, जो एक व्यक्ति के धन—अन्न आदि के अधिक संग्रह से समाज में अभाव उत्पन्न होता है, उससे लोगों को दुःख, हानि और कष्ट पहुंचता है, जिससे कि उसकी अहिंसा मलिन हो जाती है, और अप्रत्यक्ष रुप में वह फिर हिंसक बन जाता है तथा समाज की दृष्टि में वह गिर जाता है। अतः साधक अपरिग्रह रूप यम का हृदय से पालन कर यथोचित साधनों को

ही स्वीकार कर अपनी अहिंसा के स्वरूप को समुज्जवल करता हुआ सब की श्रद्धा का पात्र बनता है। ये पांचों यम ''व्रत'' कहते हैं और जो भी साधक–योगी इनका जी–जान से पालन करता है, वह व्रती कहता है, पर अगर इन ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि यमों का, व्रतों का ''जाति, देश, काल और समय से अनवच्छिन्न होकर, अप्रतिबद्ध होकर अर्थात् इनकी सीमाओं के बन्धन से रहित होकर, इनकी सीमाओं से ऊपर उठकर जब चित्त की (क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध) इन सब अवस्थाओं में पालन किया जाता है तो फिर ये ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि यम महाव्रत बन जाते हैं, और इनका पालन करने वाला साधक–योगी महाव्रती कहलाने लगता है।

अब यह जाति, देश, काल और समचावच्छिन्न अहिंसा वह होती है कि जिसके अनुसार किसी मनुष्य की अहिंसा किसी जातिविशेष, वर्गविशेष, देशविशेष, काल विशेष, समयविशेष, प्रयोजनविशेष की सीमाओं में बंधी हुई रहती है। जैसे एक मछियारा मछली पकड़ने वाला, मछली मार कर बेचता है व खाता है तो उस व्यक्ति की मछलियों के मारने में तो हिंसा होती है, पर दूसरी भेड़, बकरी, सुअर, मुर्गी आदि जातियों के प्राणियों में अहिंसा ही रहती है। इसलिए यह जात्यवच्छिन्न अहिंसा हुई। जातिविशेष के जन्तुओं की सीमाओं में बंधी रहने वाली अहिंसा हुई। इसलिए यह अहिंसा तो है, व्रत तो है, और इस अहिंसा व्रत के पालन करने वाले का नाम व्रती भी है, परन्तु यह अहिंसा जात्यवच्छिन्न होने से, जातिविशेष के प्राणियों की सीमाओं में बंधी रहने से यह पूर्ण अहिंसा कभी नहीं कहला सकती, यह महाव्रत कभी नहीं कहला सकती। जिस दिन यह अहिंसा जात्यवच्छिन्न हो जायेगी, जाति विशेष के प्राणियों की सीमाओं को वर्गविशेष के प्राणियों की हद को लांघ कर सब के प्रति समान रूप से अपनाई जायेगी, अर्थात् जिस में किसी को भी, किंचित् भी, कभी भी, कष्ट–हानि पहुंचाने की बात नहीं होगी, उस समय यह अहिंसा पूर्ण अहिंसा कहलायेगी, उस समय यह सार्वभौम, (आलमगीर) अहिंसा कहलायेगी, यह महाव्रत कहलायेगी, और इसका पालन करने वाला पूर्ण अहिंसक कहलायेगा, महाव्रती कहलायेगी।

इसी प्रकार देशावच्छिन्न अहिंसा वह होती है कि जिस में मनुष्य यह सोचता है कि ''मैं किसी देशविशेष में किसी स्थानविशेष में अर्थात् मथुरा, वृन्दावन, काशी, हरिद्वार व मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजे आदि में हिंसा नहीं करूंगा। अर्थात् ऐसे स्थानों पर मैं पूर्णतया अहिंसा का पालन करूंगा परन्तु अन्यत्र मैं अहिंसा मैं अहिंसा का पालन नहीं करूंगा अर्थात् अन्यत्र में हिंसा कर सकता हूं।'' ऐसा सोचने वाला अहिंसक तो है, परन्तु उस की अहिंसा देशविशेषों, स्थानविशेषों तक सीमित रहने से पूर्ण अहिंसा नहीं कहला सकती, और न ही वह महाव्रत कहला सकती है।

कलावच्छिन्न अहिंसा वह कहलाती है जो काल की सीमाओं में बंधी हुई रहती है, जिस को अपनाने वाला व्यक्ति सोचता है कि– ''मैं एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णमासी व मंगलवार आदि के दिन किसी की हिंसा नहीं करूंगा, अर्थात् इन दिनों में मैं अहिंसक रहूंगा।, पर इन से भिन्न दिनों में मैं हिंसा कर सकता हूं, मैं मछली, मुर्गा आदि मार कर खा सकता हूं।'' ऐसे व्यक्ति की यह जो अहिंसा हुई यह पूर्णहिंसा नहीं हुई, सार्वकालिक अहिंसा नहीं हुई। अतः यह अहिंसा व्रत तो कहला सकती है, यह व्रत तो है पर महाव्रत नहीं। इसलिए काल की इन सीमाओं में बंधी हुई अहिंसा का पालन करने वाला व्रती तो कहला सकता है, पर वह महाव्रती कभी नहीं कहला सकता।

समयावच्छिन्न अहिंसा वह होती है कि जिस में मनुष्य यह कहता है कि–''मैं समय विशेष पर व अवसर विशेष पर किसी प्रयोजन विशेष के लिए गौ–ब्राह्मण की रक्षा के लिए हिंसा करूंगा, अन्यत्र हिंसा नहीं करूंगा। अर्थात् देव–ब्राह्मणों, बाल–वृद्धों व अनाथ– असहायों की रक्षा–सुरक्षा के निमित्त तो मैं आततायियों को मारूंगा, उन का

मैं वध करूंगा, यद्वा क्षत्रिय बनकर देश की रखा के निमित्त तो युद्ध में शत्रुओं का मैं हनन करूंगा, पर अन्यत्र नहीं। यह है मेरी समय, अवसरविशेष से की गई हिंसा। इस के अतिरिक्त तो मैं सर्वत्र अहिंसा का ही पालन करूंगा।'' यह हुई समयावच्छिन्न–समय की सीमाओं में बंधी हुई अहिंसा। अतः यह पूर्ण अहिंसा नहीं हुई।

ऐसे लोगों की यह जो अहिंसा है, यह अहिंसा तो है, पर पूर्ण अहिंसा नहीं, सार्वभौम अहिंसा नहीं। व्रत तो है, पर महाव्रत नहीं। पूर्णहिंसा तो यह तब कहलायेगी, महाव्रत तो यह तब कहा जायेगा। जबकि जातिविशेष, वर्गविशेष, प्राणीविशेष, प्रसंगविशेष, प्रयोजनविशेष, अवसरविशेष की सीमाओं से ऊपर उठकर सर्वदा, सर्वथा सब प्राणियों के प्रति चित्त की सभी अवस्थाओं में बिना हेर–फेर के अर्थात् सहज रूप से इस का पालन किया जाएगा। अर्थात् जब कुछ भी, कहीं भी, कभी भी, किसी प्रयोजन के लिए किसी की भी हिंसा न की जावेगी तो तब वह अहिंसा सार्वभौम अहिंसा कहलायेगी, महाव्रत कहलायेगी।

ऐसे ही जो किसी जातिविशेष अर्थात् वर्ग विशेष के प्राणियों के साथ मन, वचन, कर्म से सत्य व्यवहार करता है। और अन्यों के साथ असत्य व्यवहार करता है, फिर वह देशविशेष, स्थानविशेष अर्थात् काशी, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन व मन्दिर, मस्जिद, गुरुदारे में तो सत्य बोलता है पर अन्यत्र असत्य बोलता है। फिर वह कालविशेष में अर्थात् एकादशी, चतुर्दशी व मंगलवार व प्रातः सायं तो सत्य बोलता है पर अन्य कालों में झूठ बोलता है। फिर वह समयविशेष, प्रसंगविशेष व प्रयोजनविशेष के लिए तो सत्य बोलता है पर वैसे वह झूठ बोल देता तो ऐसे व्यक्ति का जो सत्य है वह जाति, देश, काल और समयावच्छिन्न है। जाति, देश, काल और समय की सीमाओं से बंधा हुआ है, अतः वह सत्य नहीं, वह महाव्रत नहीं। पूर्ण सत्य तो वह तब होगा, महाव्रत तो वह तब होगा जबकि वह जातिविशेष, वर्गविशेष, देशविशेष, स्थानविशेष की, कालविशेष, समयविशेष की, प्रसंगविशेष, अवसरविशेष आदि की सीमाओं को लांघ कर बोला जायेगा। तभी उस को बोलने वाला, तभी उस सत्य को कहने वाला वह योगी तपस्वी भी कहलायेगा, महाव्रती भी कहलायेगा। इसी प्रकार अस्तेय–चोरी का त्याग भी, ब्रह्मचर्य का पालन भी, और अपरिग्रह का पालन भी, जब कोई जाति, देश, काल और समय–प्रसंगविशेष की सीमाओं से ऊपर उठ कर करता है, अर्थात् जो सर्वदा–सदा, सर्वथा– सब प्रकार से, सब प्राणियों के प्रति अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह वृत्ति को अपनाए रखता है, तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी, कहीं भी, कभी भी, किसी की भी, मन से भी चोरी नहीं करता, जो कुछ भी, कहीं भी, कभी भी, किसी के प्रति भी वासना भरे भाव नहीं रखता, जो कुछ भी, कहीं भी, कभी आवश्यकता से अधिक परिग्रह– संग्रह नहीं करता तो ऐसे योगी का जो सत्य है, ऐसे योगी का जो ब्रह्मचर्य है, और ऐसे योगी का जो अपरिग्रह है, वह पूर्ण अर्थात् सार्वभौम सत्य, पूर्ण अर्थात् सार्वभौम ब्रह्मचर्य और पूर्ण अर्थात् सार्वभौम अपरिग्रह बन जाता है। वह महाव्रत बन जाता है और उसका पालन करने वाला महाव्रती बन जाता है।

सारांश यह है कि ये सारे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप जो यम हैं ये एक सीमा के भीतर भी व्रत के रूप में पालन किये जाते हैं। पर जब एक योगी इन अहिंसा, सत्य आदि यमों के पालन में सारी सीमाओं को तोड़ कर इन को सार्वभौम बना देता है, अर्थात् जब उसके ये अहिंसा, सत्य आदि धर्म सारी जातियों के (प्राणियों के) लिए हो जाते हैं, सारे देशों के लिए हो जाते हैं, जब कालों के लिए हो जाते हैं, और प्रत्येक अवसर के लिए हो जाते हैं, तात्पर्य यह है कि चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए पर अगर वह इनके पालन करने में तनिक सी भी त्रुटि नहीं करता तो तब उसके ये व्रत महाव्रत बन जाते हैं और वह स्वयं महाव्रती बन जाता है।

ऋषिभक्त श्रीमती प्रभा तोमर को श्रद्धांजलि

वैदिक साधन आश्रम तपोवन के सहयोगी श्री जितेन्द्र सिंह तोमर जी की धर्मपत्नी श्रीमती प्रभा तोमर जी का दिनांक 30–9–2019 को अपरान्ह देहावसान हो गया। दिनांक 1–10–2019 को देहरादून के लक्खीबाग श्मशान घाट पर आर्य पुरोहित पं0 वेदवसु शास्त्री जी के पौरोहित्य में पूर्ण वैदिक रीति से उनकी अन्त्येष्टि सम्पन्न की गई। आश्रम की ओर से इसके मंत्री श्री प्रेम प्रकाश शर्मा बहिन जी की अन्त्येष्टि मे सम्मिलित हुए और उन्हें अपने श्रद्धा–सुमन अर्पित किये।

बहिन जी की आयु 72 वर्ष थी। श्रीमती प्रभा तोमर जी की ऋषि दयानन्द में गहरी श्रद्धा व निष्ठा थी और वह आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत करती थी। वैदिक साधन आश्रम तपोवन के उत्सवों सहित आर्य संस्थाओं के आयोजन में वह उत्साह से भाग लेती थी। वह कई बार ऋषि दयानन्द की जन्म भूमि, टंकारा में प्रत्येक वर्ष आयोजित होने वाले बोधोत्सव में भी गई थी। देश भ्रमण में भी उनकी रुचि थी। उन्होंने कई बार देश के अनेक भागों की लम्बी यात्रायें की थीं जिसमें दक्षिण के रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, मदुरै, हैदराबाद सहित मुम्बई, गोवा आदि स्थान भी सम्मिलित थे।

बहिन प्रभा तोमर जी के परिवार में एक पुत्र व चार पुत्रियां हैं। सभी विवाहित हैं और सबका अपना अपना भरा–पूरा परिवार है। बहिन जी का गृहस्थ जीवन काल लगभग साढ़े छप्पन वर्ष का रहा है। उनका जीवन सादगी, पवित्रता एवं सदाचरण का एक उदाहरण था।

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन बहिन प्रभा तोमर जी के निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करता है और उनके परिवारजनों के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह श्री जितेन्द्र सिंह तोमर जी को अच्छा स्वास्थ्य एवं दीघार्यु प्रदान करें और उनका पूरा परिवार वैदिक सिद्धान्तों पर चलकर देश, धर्म एवं जाति की सेवा में तत्पर रहे। आशा है श्री जितेन्द्र सिंह तोमर जी तथा उनके परिवार के सदस्यगण पूर्व की भांति वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून की सेवा में पूर्ण समर्पण व सेवाभाव से अपना योगदान देते रहेंगे।

दर्शन कुमार अग्निहोत्री	**अशोक कुमार वर्मा**	**प्रेम प्रकाश शर्मा**
प्रधान	कोषाध्यक्ष	मंत्री

आर्य समाज

–आर्य रविन्द्र कुमार जी

वेदों में कन्याओं (स्त्रियों) को पढ़ाने का भी प्रमाण है–

ब्रह्मचर्य्येण कन्या विन्दते पतिम्।

(अथर्व ११।२४।३।१८)

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त हो के युवती, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों से विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे। इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य, विद्या और वेद ज्ञान अवश्य ग्रहण करना चाहिये। अतः सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने–पढ़ाने का सम्पूर्ण अधिकार है। लड़कों को लड़कों की तथा लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें।

स्त्रियों को व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य सीखने चाहिये।

(१) ब्राह्मणी–

(क) ब्राह्मणी के सब विद्या अर्थात् अक्षरों का उच्चारण; पाणिनीमुनि कृत शिक्षा; अश्टाध्यायी सूत्रों के पाठ से व्याकरण; पतंजलि के महाभाष्य; यास्कमुनि कृत निघण्टु और निरुक्त; पिंगलाचार्य कृत छन्दोग्रंथ; (चार वर्ष का समय)

(ख) मनुस्मुति, वाल्मीकि रामायण, वेदव्यास महाभारत का उद्योगपर्व; विदुरनीति; (एक वर्ष)

(ग) ग्यारह उपनिषद् (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक और श्वेताश्वतर); व छः शास्त्र–पूर्वमीमांसा (व्यासमुनिकृत व्याख्या); वैशेषिक (गोतममुनिकृत प्रशस्तपाद्भाष्य); न्याय (गोतममुनिकृत न्यायसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य); योग (पतंजलिमुनिकृत सूत्र पर व्यासमुनिकृत भाष्य); सांख्य (कपिलमुनिकृत सांख्यसूत्र पर वात्सयाननमुनिकृत भाष्य अथवा बौधायनमुनिभाष्य वृत्तिसहित); (दो वर्ष)

(घ) चारों ब्राह्मण (ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ) व चारों वेद (स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रियासहित); (छः वर्ष)

(च) आयुर्वेद (चरक, सुश्रुत आदि ऋषिमुनि प्रणीत वैद्यक शास्त्र; अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण–ज्ञानपूर्वक पढें।); (चार वर्ष)

(छ) धनुर्वेद (विश्वामित्र, जमदग्नि आदि कृत); (दो वर्ष)

(ज) गान्धर्ववेद (गायन विद्या अर्थात् नारद–संहिता, स्वर, राग, ताल, वादित्र, नृत्य, गीत आदि); (दो वर्ष)

(झ) अर्थवेद (शिल्पविद्या अर्थात् गुण–विज्ञान, क्रियाकौशल, नानाविध पदार्थों की विद्या, पृथिवी से लेकर अकाशपर्यन्त की विद्या आदि); (दो वर्ष)

(न) ज्योतिष शास्त्र; सूर्यसिद्धान्त (बीजगणित, अंकगणित, रेखागणित, भूगोल, खगोल, भूगर्भविद्या और इतिहास आदि); (दो वर्ष)

योगीराज श्री कृष्ण की भगवत् गीता, आचार्य विष्णुगुप्त कृत नीतिशास्त्र व अर्थशास्त्र अवश्य पढ़ना चाहिए तथा हस्तक्रिया व यंत्रकला आदि भी सीखें।

वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष छः वेदों के अंग) की विद्या स्वतः ही बीच–बीच में उपस्थित है।

परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रंथ है उन्हें झूठ समझ कर कभी न पढ़ें अथवा पढ़ावें।

(२) क्षत्रियों को उपरोक्त वर्णित सब विद्या तथा इसके अतिरिक्त युद्ध तथा राजविद्या–विशेष का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

(३) वैश्या (वैश्य की पत्नी) को उपरोक्त वर्णित सब विद्या तथा इसके अतिरिक्त व्यवहार–विद्या का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

(४) शूद्रा को उपरोक्त वर्णित सब विद्या तथा इसके अतिरिक्त पाकादि सेवा का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने प्रत्येक वर्ण की विद्या को ध्यान में रखते हुए कहा है कि बीस–इक्कीस वर्ष के भीतर समग्र विद्या, उत्तम शिक्षा प्राप्त करके मनुष्य सदा आनन्द में रह सकता है। उनके इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आज आर्य संस्थायें समस्त भारत में गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय का संचालन कर शिक्षा व ज्ञान के प्रचार और प्रसार में कार्यरत हैं। कुछ तथ्यहीन, कपोलकाल्पनिक मंत्र गढ़े गये है जिनका श्रुति अथवा मनुस्मृति में प्रक्षेपित किया गया है। उन अनर्गल वचनों पर ध्यान न दें। इसी प्रकार वेद तथा अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों के अनर्थयुक्त भाष्यों पर विचार न करें। हमारे दो ऐतिहासिक महाकाव्य (रामायण व महाभारत) में बहुत सी अनर्गल बातों को प्रेक्षपित किया गया है, उन पर बिल्कुल भी ध्यान न दें।

विनम्र अनुरोध

वैदिक साधक आश्रम तपोवन, देहरादून द्वारा संचालित तपोवन विद्या निकेतन जूनियर हाई स्कूल के लिए निम्न सामग्री की आवश्यकता है:

(1) स्टील की अलमारी – 2 नं.

(2) लायब्रेरी के लिए शीशे के पल्लों वाली स्टील की अलमारी – 3 नं.

(3) कम्प्यूटर लैब के लिए कम्प्यूटर, मॉनिटर, सी.पी.यू., की–बोर्ड, माऊस आदि – 6 सैट

(4) 48 इंच साईज के सीलिंग फैन – 10 नं.

दानी सज्जनों से अनुरोध है कि इस पुनीत कार्य में अपना सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

वैदिक योग प्रशिक्षण शिविर (प्रथम स्तर)

(17 नवम्बर सायंकाल से प्रातः 24 नवम्बर 2019)

स्थान : वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून

यदि आप सत्य, सनातन वैदिक सिद्धान्त को आत्मसात् कर वैदिक साधना पद्धति के शुद्ध स्वरूप को प्रायोगिक स्तर पर समझकर स्वयं तथा ईश्वर की यथार्थ, निर्भ्रान्त अनुभूतियों को स्पर्श करना चाहते हों तो आपका वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी देहरादून में 17 नवम्बर 2019 सायंकाल से प्रारम्भ होकर प्रातः 24 नवम्बर 2019 को समाप्त होने वाले वैदिक योग प्रशिक्षण शिविर प्रथम स्तर में भाग लेना सार्थक हो सकता है।

यह शिविर आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य के मार्गदर्शन में होगा। इस शिविर में वैदिक योग का क्रियात्मक प्रशिक्षण तथा योग्यता व पात्रतानुसार शंका समाधानपूर्वक साधना हेतू मार्गदर्शन दिया जायेगा। समस्त दैनिक व्यवहार में मन को चिन्ता, तनाव से रहित कर शान्त व समता में बनाये रखना किस प्रकार से सम्भव हो सकता है, इसका प्रशिक्षण भी इसके अन्तर्गत होगा।

1. यह शिविर आवासीय है। शिविर में महिलाओं व पुरुषों की निवास व्यवस्था पृथक–पृथक होती है।
2. सम्पूर्ण शिविर में विधिवत् भाग लेने के इच्छुक सज्जन ही आवेदन हेतू सम्पर्क करें। शिविर समापन से पूर्व वापिस जाना सम्भव नहीं हो सकेगा तथा 17 नवम्बर सायंकाल 6:00 बजे के बाद प्रवेश नहीं दिया जायेगा। इस कष्ट हेतु हम पूर्व से ही क्षमा प्रार्थी हैं।
3. प्रथम स्तर के शिविरों में भाग लेने वाले साधक ही आगे गम्भीर साधना के शिविरों में भाग ले सकेंगे।
4. शिविर में अधिकाधिक 125 साधक साधिकाओं की ही व्यवस्था सम्भव है। अतः इच्छुक जन पूर्व ही अपना स्थान सुरक्षित करा लें। पुराने शिविरार्थी भी भाग ले सकते हैं।
5. स्थान आरक्षण व अन्य जानकारी हेतु इन महानुभावों से सम्पर्क करें :–1. श्री नन्द किशोर अरोड़ा जी, दिल्ली, (मो0नं0–09310444170) समय दिन में 10:30 बजे से सायं 4:00 बजे तक, एवं रात्री 8 बजे से 10 बजे तक, 2. श्री प्रेम जी – 8076873112, 9456790201, समय प्रातः 10:30 बजे से सायं 4:00 बजे तक, एवं रात्री 8 बजे से 9:30 बजे तक।
6. अपनी वापिसी का आरक्षण पूर्व ही करा कर आयें। शिविर के मध्य अग्रिम यात्रा हेतु आरक्षण करवाने की सुविधा हमारे पास नहीं है।
7. शिविर में भाग लेने की न्यूनतम आयु सीमा 17 वर्ष है। अपने साथ संचिका, पेन, टार्च व फल काटने हेतु चाकू अवश्य लायें।
8. शुल्क–इस ईश्वरीय कार्य में शिविर हेतु श्रद्धा व भावनापूर्वक स्वैच्छिक सहयोग करना सभी प्रतिभागियों के लिये अनिवार्य है।
9. आवश्यकता होने पर आचार्य आशीष जी (मो0नं0–09410506701) से रात्रि 8.00 बजे से 9.00 बजे के मध्य सम्पर्क कर सकते है।

निवेदक

दर्शन कुमार अग्निहोत्री
अध्यक्ष
09710033799

ई० प्रेम प्रकाश शर्मा
सचिव
09412051586

श्री अशोक वर्मा
कोषाध्यक्ष
09412058879

वैदिक संध्या प्रशिक्षण शिविर

(26 नवम्बर सायंकाल से 01 दिसंबर प्रातःकाल तक)

एवं

दैनिक यज्ञ एवं प्रातःकालीन–सांयकालीन मन्त्र प्रशिक्षण शिविर

(3 दिसंबर सांयकाल से 8 दिसंबर 2019 प्रातःकाल तक)

स्थान – वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड)

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, नालापानी, देहरादून में वैदिक संध्या एवं वैदिक यज्ञ प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन उपरोक्त तिथियों में आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य के निर्देशन में होगा। वैदिक संध्या के यथार्थ स्वरुप व क्रियात्मक पक्ष को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कृत ''पंचमहायज्ञविधि'' के माध्यम से सूक्ष्मता से समझने व सीखने का अवसर इन शिविरों में उपलब्ध होगा। वैदिक संध्या के गूढ आध्यात्मिक पक्ष को महर्षि की मेधा प्रज्ञा से समझकर ही साधक–साधिकायें वर्तमान में प्रचलित संध्या के स्थूल स्वरुप से ऊपर उठकर संध्या की आध्यात्मिक गहराई में प्रविष्ठ हो आध्यात्मिक आह्लाद व स्वयं में रुपांतरण अनुभव कर सकेंगे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कृत ''पंचमहायज्ञविधि'' ही वैदिक संध्या को समझने का एकमात्र प्रामाणिक अनुपम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के माध्यम से संध्या को समझना अनेक साधक–साधिकाओं के लिए आश्चर्यजनक रुप से बहुत नवीन और लाभकारी हो सकेगा।

दैनिक यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के अर्थों व क्रियाओं के आध्यात्मिक व वैज्ञानिक स्वरुप को समझकर यज्ञ करना आत्मजागरण में विशेष लाभकारी व सहायक होता है। दैनिक यज्ञ प्रशिक्षण शिविर में यज्ञ के आध्यात्मिक व वैज्ञानिक पक्ष को मन्त्रार्थों के अनुसार विस्तारपूर्वक हृदयङ्गम करने का विशिष्ट अवसर उपलब्ध होगा। आचार्य आशीष जी की जटिल विषयों को भी अत्यंत सरलता व रोचकता के साथ गहराई से स्पष्ट करने की योग्यता को देश–विदेश के हजारों साधक–साधिकाओं ने अनुभव किया व लाभ उठाया है। इन शिविरों के माध्यम से हम उनसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त करें जिससे हमारे संध्या व हवन मात्र यांत्रिक न हों अपितु हमें आत्मजागरित करने वाले हो सकें।

इन शिविरों में साधक–साधिकायें प्रातः व सायंकालीन दिनचर्या व ध्यान–साधना व्यक्तिगत रुप से करेंगे। स्थानीय इच्छुक महानुभाव भी कक्षाओं में भाग ले सकते हैं। स्थानीय महानुभाव कक्षाओं के समय की जानकारी सम्पर्क सूत्र में उपलब्ध नम्बरों पर कर सकते हैं।

शिविर शुल्क– इस ईश्वरीय कार्य में प्रत्येक प्रतिभागी द्वारा यथासामर्थ्य स्वैच्छिक सहयोग देना अनिवार्य है। साथ लाने योग्य अनिवार्य वस्तुयें – 1. पंचमहायज्ञविधि 2. दैनिक हवन मंत्रों की पुस्तक 3. कापी, पैन, टार्च, चाकू आदि। शिविर में कक्षाओं की किसी भी प्रकार की ऑडियो, वीडियो रिकार्डिंग निषिद्ध है। शिविर में स्थान सीमित हैं।

स्थान आरक्षण हेतु निम्नलिखित महानुभावों से सम्पर्क करें।

1. श्री नन्दकिशोर जी, मो०–9310444170 (प्रातः 10 से सायं 4, रात्रि 8 से 10 बजे तक)
2. श्री प्रेम जी, मो० 8076873112, 9456790201 (प्रातः 10 से सायं 4.30 रात्रि 8 से 9.30 बजे तक)

निवेदक

दर्शन कुमार अग्निहोत्री
अध्यक्ष
09710033799

ई० प्रेम प्रकाश शर्मा
सचिव
09412051586

Delite KOM
freedom to work...
DELITE KOM LIMITED

All dimensions are subject to change without any prior notice because of continuous research & development. All designs shown here are proprietary: Any infringement is liable for prosecution.

Delite KOM DELITE KOM LIMITED

Kukreja House, IInd Floor, 46, Rani Jhansi Road, New Delhi-110055
Ph. : 011-46287777, 23530288, 23530290, 23611811 **Fax :** 23620502 **Email :** delite@delitekom.com

ISO 9001 DNV CERTIFIED

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2018-2020 समाचार पत्र पंजीयन 51900/88

With Best Compliments From

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉकर्स

TPM Certified

ISO / TS - 16949 - 2002 Certified

ISO - 14001 Certified

OHSAS - 18001 Certified

हमारे उत्पाद

- स्ट्रट्स / गैस स्ट्रट्स
- शॉक एब्जॉर्बर्स
- फन्ट फोर्क्स
- गैस स्प्रिंगस / विन्डो बैलेन्सर्स

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बस बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फ्रन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिंगस की टू व्हीलर / फोर व्हीलर उदयोगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिंग प्लॉट हैं – गुड़गाँव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है।

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं. 9–11, मारुति इंडस्ट्रियल एरिया
गुड़गाँव–122015, हरियाणा
दूरभाष :
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।
संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com